शांति-यात्रा

[जीवन के नैतिक विकास में प्रेरणा देने वाले प्रवचन]

•

आचार्य विनोबा

१९५१

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

प्रयोजन

शांति और रचनात्मक काम के एक सेवक की हैसियत से आजकल मैं हिंदुस्तान में घूम रहा हूं। गए साल के भ्रमण में दिए गए व्याख्यानों का यह सार-संग्रह है। मैं आशा करूंगा कि रचनात्मक मनोवृत्ति बढ़ाने में इससे कुछ मदद पहुंचेगी।

परंधाम, पवनार
२१-२-४९

—विनोबा

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

: १ :

धर्म और सत्ता

आज यह पहला प्रसंग है जब कि मैं दिल्ली के लोगों के सामने बोल रहा हूं। २४ साल पहले मेरे यहां आने का प्रसंग हुआ था। बापूजी हिंदू-मुस्लिम सवाल पर २१ दिन का उपवास कर रहे थे, तब उनके साथ मैं रहा था। उस समय जो प्रार्थना होती थी उसमें बोलना भी पड़ता था। मुझे याद है कि तब मैं कठोपनिषद् पर बोला था। लेकिन वह चंद भाइयों के सामने था, यह एक आम सभा है।

यह ठीक ही हुआ कि यहांके मेरे काम का आरंभ प्रार्थना से हो रहा है। बापू के जीवन की समाप्ति प्रार्थना से हुई। आप सब लोग उस घटना को जानते हैं, इसलिए उसका जिक्र मैं नहीं करूंगा। मेरे शब्द वहां काम नहीं देंगे। बापू से पहली मर्तबा मैं ३२ साल पहले मिला। तबसे अबतक उनके साथ काम किया। जो रचनात्मक काम बापू ने हमें सिखाये उनको चुपचाप करता रहा। अब आप के सामने यहां आकर खड़ा हुआ हूं। मैं बोलने का आदी नहीं हूं। इसलिए आपका अधिक समय नहीं लूंगा।

एक तरह से स्वराज्य हमें हासिल हो गया है। लेकिन उसके बाद हिंदुस्तान की हवा बहुत बिगड़ी है। उसको सुधारने की कोशिश बापू ने आखिर तक की। गिरती हुई इन्सानियत

को ऊपर उठाने की कोशिश में उन्होंने देह छोड़ी। और वह कार्य अब वे हम लोगों पर छोड़ गये हैं। बापू के जाने के बाद वर्धा में उनके साथियों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें अभी अपना क्या कर्तव्य है, इस बारे में विचार हुआ। उसमें यह बात स्पष्ट हुई कि हिंदुस्तान की हवा शुद्ध करने में ही अपना जीवन हमें लगा देना चाहिए। उसके बाद मैं यहां आपकी सेवा में आया हूं। मेरे साथ जाजूजी आए हैं, जो चर्खा संघ का काम बरसों से करते आए हैं। जमनालालजी बजाज की धर्मपत्नी जानकी देवीजी भी आई हैं। शरणार्थियों के काम में हम क्या कर सकते हैं, यह देखेंगे। सरकार तो वह काम कर ही रही है। कांग्रेस भी कर रही है। हम उनकी मदद करने की कोशिश करेंगे। उसमें से क्या मिलनेवाला है, यह मैं नहीं जानता। उस तरह मैं सोचता भी नहीं हूं। काम करने का अधिकार हमारा है। उसका नतीजा तो उसके हाथ में है, जिसकी प्रार्थना हम रोज करते हैं। जो रास्ता बापू ने हमें बताया वह साफ है। वह यह कि काम कठिन भी क्यों न हो, उसे करते चले जायं। उसमें हमारा जीवन खत्म हो गया तो चिंता ही मिट गई। जैसे पानी समुद्र की तरफ जाने के लिए निकलता है, समुद्र में मिलना है, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर चलता है। रास्ते में गड्ढा मिल गया तो उसे भर कर ही आगे बढ़ता है, न बचा तो उस गड्ढे में खत्म हो जाता है। उससे अगर पूछा जाय कि तेरी मन्शा क्या थी? तो वह यही जवाब देगा कि मैं तो समुद्र की तरफ जा रहा था, रास्ते में यह गड्ढा आ गया, उसे भरने की कोशिश

की, उसमें मेरा जीवन खत्म हो गया। मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूं।

दुःखियों के दुःख मिटाने की तो कोशिश हम करते ही रहेंगे। दुःखी भी अपना दुःख कुछ दिनों के बाद भूल जायंगे। दुनिया में चंद रोज दुःख और चंद रोज सुख आते रहते हैं। वे तो भाई-भाई हैं। एक गया तो दूसरा आता है। घर में किसीकी मृत्यु हुई तो हम रोते हैं और जन्म होता है तब खुशी मनाते हैं। इस तरह सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु दुनिया में चला ही करते हैं। इसलिए दुःख दूर करना मुख्य चीज नहीं है। मुख्य चीज है द्वेष के खिलाफ लड़ना। आज द्वेष-बुद्धि ने हिंदुस्तान में घर कर लिया है। द्वेष-बुद्धि को हम द्वेष से नहीं मिटा सकते, प्रेम की शक्ति ही उसे मिटा सकती है। सल्तनत की सत्ता से वह मिटनेवाली नहीं है, सल्तनत के बाहर जो लोग हैं उनका वह काम है। सल्तनत उस काम में मदद कर सकती है। लेकिन मुख्य काम तो जनता को ही करना है।

एक बात आरंभ में ही कह देना चाहता हूं। हिंदूधर्म के राज्य की बात हम अपने दिल में से निकाल दें। अगर हिंदूधर्म का भला चाहते हैं तो सत्ता के साथ उसे जोड़ने का खयाल न करें। सत्ता से धर्म फैलाने के प्रयोग इतिहास में हुए हैं, लेकिन उनसे धर्म की हानि ही हुई है। धर्म का उद्देश्य ही सत्ता से विपरीत है। धर्म और सत्ता दोनों का मेल ही नहीं है। जिन्होंने धर्म की खोज में जीवन लगाया वे सत्ता से अलग, दुनिया के सुख-दुःखों से परे, रहकर चिंतन करते रहे और उस चिंतन के प्रभाव से धर्म की प्रभा फैली। धर्म-प्रचार के

लिए उन्होंने सत्ता की इच्छा नहीं रखी, इतना ही नहीं, बल्कि उससे वे दूर रहे। इस विषय में अगर मैं प्रमाण दूं तो शंकराचार्य का दे सकता हूं। हिंदू-धर्म के प्रचार का काम उनसे बढ़कर शायद किसीने नहीं किया है। उसके लिए सारे हिंदुस्तान में वह कई दफा पैदल घूमे। उन्होंने लिखा है कि "धर्मतत्त्व के प्रचार का एक मात्र साधन बुद्धि है। अगर कोई नहीं समझता है तो बुद्धि से उसको समझाना है। फिर भी नहीं समझता है तो फिर से समझाना है। बुद्धि के सिवा विचार-प्रचारका दूसरा कोई शस्त्र नहीं है। क्योंकि अज्ञान को ज्ञान ही मिटा सकता है।" हिंदूधर्म का श्रेष्ठ मंत्र गायत्री माना गया है। उसमें भगवान से प्रार्थना की है कि वह हमें बुद्धि दें। इसीलिए धर्म का प्रचार करनेवाले शंकराचार्य ने बुद्धि से ही समझाने की बात कही है। धर्म-प्रचार का दूसरा हथियार ही नहीं है। मिसाल के तौर पर एक बात कहता हूं। हिंदू-धर्म में एक महान् विचार मनुष्य के पुनर्जन्म का है। इस जन्म में मनुष्य जो कार्य करता है उसे अगर वह पूरा नहीं कर पाता तो दूसरे जन्म में उसे पूरा करने की कोशिश करता है। इस तरह मनुष्य का निरंतर विकास होता रहता है। अब इस विचार को जो नहीं मानते उन्हें क्या आप सत्ता से या कानून से मानने को मजबूर करेंगे? मान लो कि हिंदू-राज हो गया, तो क्या ऐसा कानून बनेगा कि जो पुनर्जन्म के विचार को मानते हैं वे ही उस राज्य में रहें, बाकी बाहर चले जायं या उन्हें जेल में भेजा जाय? पुनर्जन्म का विचार तो बुद्धि से ही समझने का विचार है। मुझे ऐसे कई हिंदू मिले हैं जो पुनर्जन्म को नहीं

मानते। कई मुसलमान और क्रिस्ती ऐसे मिले हैं जो कहते हैं कि इस विचार में कोई सार है। धर्म आत्मा का विषय है जिसका प्रचार चिंतन से, ज्ञान से, तपस्या से, अनुभव से ही होता है। बापू ने हमारे लिए एक उदाहरण दे दिया है। प्रार्थना के समय उन्हें रक्षण देने की बात निकली तो उन्होंने कहा कि उस समय तो मैं भगवान के ही हाथ में रहूंगा। उस समय किसी दूसरे रक्षण की बात मैं सहन नहीं करूंगा। क्योंकि प्रार्थना अगर रक्षण के अंदर होती है तो वह प्रार्थना ही मिट जाती है। हम रक्षण को लेते हैं तो भगवान को छोड़ देते हैं। इस लिए हिंदू-धर्मवाले, और सब धर्मवाले, धर्म को सत्ता से जोड़ने की बात छोड़ दें। दोनों को जोड़ने जाते हैं तो धर्म की हानि करते हैं।

और उससे राज्य की भी हानि करते हैं। यह भी इतिहास ने देखा है। आज तो दुनिया का सारा विचार-प्रवाह ही इसके विरुद्ध है। हर एक इन्सान में समानता हो, सब को एक-सा न्याय मिले, कोई ऊंच-नीच न माना जाय, इस विचार से जो राज्य चलेगा वही टिकेगा। अगर राज्य को टिकाना है तो धर्म के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए। अगर धर्म को बढ़ाना है तो राज्य के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए। दोनों अपनी-अपनी मर्यादा में अलग काम करते रहेंगे तो दोनों कामयाब होंगे।

अब दूसरा विचार। हिंदुस्तान एक महान् और प्राचीन राष्ट्र है। दुनिया उससे आशा रखे बैठी है। कोई कहते हैं, "दुनिया में युद्ध की तैयारी हो रही है, उससे हिंदुस्तान कैसे बच सकता है?" मैं नहीं जानता युद्ध होगा। आशा तो

करता हूं कि वह नहीं होगा। कम-से-कम निकट भविष्य में तो नहीं होगा। लेकिन होगा तो भी क्या? हिंदुस्तान को तो यही विश्वास रखना चाहिए कि वह अगर खुद सद्विचार पर चलता है तो होनेवाले युद्ध को वह काबू में ला सकता है। दुनिया का हिंदुस्तान पर असर हो सकता है। लेकिन हिंदुस्तान अगर ठीक रास्ते से जायगा तो अपने को बचा लेगा और दुनिया को भी बचा लेगा। कम-से-कम दुनिया के असर से तो वह बच ही जायगा। चंद्र के साथ चंद्र का वातावरण रहता है, मंगल के साथ मंगल का रहता है। वैसे, मेरे साथ मेरा वातावरण रहना चाहिए। लोग कहते हैं, "यह तो कलियुग आया है।" काहेका कलियुग है? कलियुग में रहना है या सत्ययुग में, यह तो तू खुद चुन ले। तेरा युग तेरे पास है। इसलिए हम ऐसा न मानें कि दुनिया की हवा ही युद्ध की है, उसके सामने हम लाचार हैं। लाचार तो जड़ होता है। हम चेतन हैं, आत्म-स्वरूप हैं, अपना वातावरण हम बनायेंगे। अब भी दुनिया हमारी इज्जत करती है, यद्यपि उसे हम बहुत कुछ खो बैठे हैं। इज्जत इसलिए करती है कि हिंदुस्तान ने अपनी आजादी के लिए जो साधन इस्तेमाल किया वह किसी दूसरे देश ने नहीं किया था। इस इज्जत को अगर बढ़ाना है तो यहां हमें शांति और एकता कायम करनी चाहिए। उससे हमारी सरकार की नैतिक शक्ति बढ़ेगी। और हिंदुस्तान के पास अगर कोई शक्ति है तो वह नैतिक शक्ति ही है। भौतिक शक्ति में तो दूसरे राष्ट्र हिंदुस्तान से काफी बढ़े हुए हैं। उस रास्ते से जाना हो तो उन राष्ट्रों के दास और शागिर्द बनकर रहना पड़ेगा।

दुनिया भी इस चीज को जानती है। शस्त्र की शक्ति के लिए हिंदुस्तान के बाहर के राष्ट्रों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। हिंदुस्तान का तो अभी उदय हुआ है। लेकिन जिस विचार को लेकर वह उठा है, उस पर दुनिया की आशा लगी हुई है। बापू की मृत्यु के बाद दुनिया के हर एक कोने से विचारकों ने अपने-अपने विचार प्रगट किये। उन सारे विचारों में यही बात थी कि दुनिया में अगर शांति और आजादी रखनी है तो उसे गांधीजी के बताये रास्ते पर ही आना होगा। मनु ने दो हजार साल पहले यह भविष्यवाणी की थी। वह कहता है "हिंदुस्तान में जो विचारक पैदा होंगे, उनसे दुनिया को चारित्र्य शिक्षण मिलेगा।" बापू के कारण पहली मर्तबा यह भविष्यवाणी सिद्ध हुई है। बापू ने जो विचार हमारे सामने रखा है, उसका अगर हम आचरण करेंगे तो हिंदुस्तान दुनिया का गुरु बनेगा। बापू के संदेश की आज दुनिया को अत्यंत जरूरत है। उसके पालन से ही दुनिया में सुख और शांति बढ़ेगी।

राजघाट, दिल्ली
शुक्रवार ३०-३-४८

: २ :

प्रार्थना की महिमा

गांधीजी के स्मरण के निमित्त हर शुक्रवार को हम लोगों ने प्रार्थना करने का रिवाज रखा है, यह अच्छा है। परमेश्वर की

प्रार्थना में अपार सामर्थ्य है। उसके साथ गांधीजी के स्मरण का भी सामर्थ्य मिल जाता है तो भावना दृढ़ हो जाती है। वैसे, ईश्वर का सामर्थ्य अनंत है। उसमें हमारी तरफ से कुछ जोड़ देने से बढ़ाव होनेवाला नहीं है। फिर भी हम लोगों के लिए जहां दोनों सामर्थ्य एकत्र होते हैं वहां कुछ विशेष अनुभूति आती है। अभी बोलते-बोलते गीता का अंतिम श्लोक मुझे याद आया जिसमें कहा है, "जहां भगवान हैं और जहां भक्त हैं वहां सब कुछ है।" वैसे तो जहां भगवान हैं वहीं सब कुछ है। लेकिन भगवान को तो हमने आंख से देखा नहीं है। भक्त को हम देख सकते हैं। इसलिए हमारी निगाह में भक्त की महिमा बढ़ जाती है। समुद्र का पानी भाप बनकर बादलों में जाता है और वहां से हमें मिलता है। पर हमारे लिए तो बादल ही समुद्र से बढ़कर है। समुद्र को दिल्लीवाले क्या जानें? वे तो बादल का ही उपकार समझेंगे। तुलसीदासजी ने लिखा ही है न? "राम ते अधिक राम के दासा।" लेकिन यह तुलना हम छोड़ दें।

हमारी दृष्टि से इस प्रार्थना में दोनों शक्तियां एकत्र हो गई हैं। सो भक्तिपूर्वक, बिना चूके, काम-धंधे आदि का सर्व विचार एक बाजू रखकर हम इस प्रार्थना में साथ देंगे तो सारे जीवन में परिवर्तन हो जायगा।

कुरान में एक सुंदर प्रसंग है। महम्मद पैगंबर ताजिरों के साथ बात कर रहे हैं। वे उनसे कहते हैं, "आप लोग रोज अपने धंधों में लगे रहते हैं, लेकिन हफ्ते में कम-से-कम एक दिन तो अपने धंधों को छोड़कर भगवान की शरण में

आइए ! उससे आपकी तिजारत भी अच्छी चलेगी ।" शरीर की शक्ति कायम रखने के लिए हमको रोज खाना पड़ता है । आत्मा के लिए तो चौबीस घंटे प्रार्थना की जरूरत है । जो वैसी प्रार्थना करते हैं वे महान् हैं । उतनी योग्यता जिनमें नहीं है, वे दिन का कुछ समय तो प्रार्थना के लिए निकालें, और कम-से-कम हफ्ते में एक दिन तो प्रार्थना के लिए इकट्ठे हो जायं । भगवान की प्रार्थना में सारे भेदों को भूल जाने का अभ्यास हो जाता है । यह तो हमारी बदकिस्मती है कि प्रार्थना के कारण भी भेद बढ़ जाते हैं । एक पंथवाले को दूसरे की प्रार्थना के शब्द सहन नहीं होते । जहां अहंकार आया वहां अच्छी चीज भी बिगड़ जाती है । भगवान के सामने हम खड़े हो जाते हैं तो सब समान, सब शून्य हो जाने चाहिए । वहां कोई ज्ञानी नहीं, कोई अज्ञानी नहीं, कोई श्रीमान् नहीं, कोई गरीब नहीं, कोई ऊंच नहीं, कोई नीच नहीं । रात में चंद्र, तारे आदि भेद चाहे दिखाई दें, परंतु सूरज निकलने पर सब साफ हो जाते हैं ।

इसलिए अपने दूसरे कार्यक्रमों को प्रार्थना के समय का खयाल रखकर तै करें, और इस सामुदायिक प्रार्थना में नम्र भाव से दाखिल हो जायं । इस तरह खयाल रखेंगे तो अपवाद करने का भी प्रसंग कम आयेगा । विवेक की जरूरत तो हर हालत में रहती ही है । किसी कारण प्रार्थना में हाजिर न रह सके तो हम जहां हों वहीं उस प्रार्थना की भावना रखें ।

राजघाट, दिल्ली
२-४-४८

: ३ :

सबसे पहले हम इन्सान हैं

शरणार्थियों को बसाने- का काम जल्दी होना चाहिए इस बात में हम सब हमराय हैं। वह जल्दी नहीं हो रहा है तो कहीं-न-कहीं गलती है, उसको हमें दुरुस्त करना होगा। उसके बारे में तफसील से विचार करना होगा।

अभी मैं सिर्फ दो बातें कहना चाहता हूं। एक तो यह कि पाकिस्तान क्या करता है यह देखकर हम यहां काम न करें। उस खयाल से तो हम अपने को दूसरों के हाथों में छोड़ देते हैं। फिर वह जैसा चाहेगा वैसा हमें बनायेगा। यह ठीक नहीं है। हमें पहल करना (इनीशिएटिव्ह) अपने हाथ में रखना चाहिए। और जो ठीक बात लगती है, करनी चाहिए। जनता तो नेताओं पर भरोसा रखकर चलती है। जो राह उसको बताई जायगी उस पर वह चलेगी। लोगों को सही रास्ता बताना नेताओं का काम है। और सही रास्ते पर चलने से ही ताकत बढ़ती है।

दूसरी बात, अभी एक भाई ने कहा कि हम हिंदू हैं, या मुसलमान हैं, इस तरह सोचना छोड़कर हम सब हिंदुस्तानी हैं ऐसा मानें। इसको मैं एक हद तक मानता हूं। लेकिन हमें तो यही विचार दृढ़ करना चाहिए कि सबसे पहले हम इन्सान हैं, बाद में सब कुछ हैं। क्योंकि "हिंदुस्तानी" के अभिमान

में भी खतरा पड़ा है। वह आज नहीं दीखेगा, आगे जाकर दीख पड़ेगा।

पीस कमेटी, दिल्ली
२-४-४८

: ४ :

प्रश्नोत्तर

आप लोगों की बातें तो सुन लीं। अब आप मेरी सुनना चाहते हैं ? बचपन में मैं कहानी पढ़ता था। हर एक कहानी के नीचे सार-रूप उपदेश लिखा हुआ रहता था। लेकिन उस उपदेश को मैं नहीं पढ़ता था। इस तरह उपदेश पढ़ने की जब मुझे ही दिलचस्पी नहीं है तो दूसरों को मैं कैसे उपदेश दूं ? इसलिए आपको उपदेश देने की मुझे नहीं सूझती। आप लोग कुछ सवाल पूछेंगे तो मैं जवाब दूंगा। इससे आपके दिल की बातें सुनने का मुझे मौका मिलेगा।

प्रश्न : हरिजनों के विद्यालय चलाये जाते हैं, उनकी कान्फ्रेंसें की जाती हैं। लेकिन हरिजनों के लिए इस तरह अलग कान्फ्रेंसें क्यों हों ? आम देहाती कान्फ्रेंस क्यों नहीं बुलाई जाती ?

उत्तर : जब तक हिंदुस्तान में हरिजन पड़े हैं तबतक उनके लिए खास काम होते रहें तो उसमें कोई दोष नहीं है।

वास्तव में हरिजन और परिजन यह भेद ही मिटना चाहिए। उस दृष्टि से हरिजनों के विद्यालय चलाना, या उनको छात्रवृत्ति देना, यह मुख्य काम नहीं हो सकता। मैं तो कहता हूं कि किसी हरिजन लड़के को अपने घर में ही रख लें। किसीको दो लड़के हैं तो इसको तीसरा लड़का समझ कर उसका पालन और शिक्षण करें। बहुत सी कान्फ्रेंसों से जो काम नहीं होगा वह इससे जल्दी हो जायगा। लेकिन घर में हरिजन रखने की बात आती है तो कहते हैं कि "घर वाले उसके लिए तैयार नहीं हैं। मैं कहता हूं कि यदि हम इतना काम करेंगे तो भगवान का आशीर्वाद पाएंगे और घर बैठे वह सेवा करेंगे जिससे बढ़ कर शायद ही कोई सेवा हो सकती है।

प्रश्न : हम लोग किसी काम के लिए चंदा इकट्ठा करते हैं, लेकिन वह पैसा वहुत करके शोषण से कमाया होता है। क्या उसका असर हम जिस काम में, वह पैसा इस्तेमाल करेंगे, उस पर नहीं होगा ? पाप से कमाया हुआ पैसा लेकर हमारे काम कैसे सफल हो सकते हैं ? क्या गांधी-स्मारक-फंड में इस तरह का पैसा लेना उचित होगा ?

उत्तर : यह बहुत अच्छा सवाल है। इसमें पहले तो मैं यह कहना चाहता हूं कि हम जितने काम करेंगे उनके लिए पैसों की ही जरूरत अगर हमें रहती हो तो हमें काम करना नहीं आता, ऐसा मानना चाहिए। सेवा के कामों के लिए तो परिश्रम की, मेहनत की और बुद्धि की मुख्य जरूरत होती है। पैसों का भी कुछ उपयोग हो सकता है। लेकिन पैसे

का आश्रय नहीं होना चाहिए। हमारा कार्य अपने ही आधार पर स्वतंत्र रूप से खड़ा होना चाहिए। उसमें पैसे की मदद मिले तो ठीक ही है, न मिले तो उसके बिना हमारा काम रुकेगा नहीं, ऐसी रचना होनी चाहिए। यह पहली विवेक करने की बात हुई।

दूसरी बात इस संबंध में यह है कि जिसके पास से मुझे पैसे मिले हैं वे उसने बुरे मार्ग से कमाए हैं या अच्छे मार्ग से, इसका फैसला करने का अधिकार मेरा नहीं है। हां ! पैसा देते समय वह अगर उसमें से कुछ नाम कमाना चाहता हो तो हम उस पैसे को नहीं लेंगे। एक भाई मुझे हरिजनों के काम के लिए पैसा देने को तैयार हुआ। लेकिन उसने सुझाया कि इस पैसे से जो कुआं बनेगा उसको मेरा नाम दिया जाय। मैंने कहा, "नाम देकर क्या करोगे ? क्या उस कुएं में डूब कर मरना है ? वर्धा में राम नायडू के नाम से शहर का एक हिस्सा बढ़ाया गया है, जिसको रामनगर कहते हैं। शहर के बाहर एक हनूमान टेकड़ी भी है। वहां मैं घूमने के लिए जाता था। अपने साथ के भाई को में समझा रहा था कि हम जहां पर खड़े हैं वह जानकी टेकरी है, पड़ोस की जो दूसरी टेकड़ी है वह लक्ष्मण टेकरी है, और उसके बाजू की हनूमान टेकड़ी है। पहली दो टेकरियों के नाम मेरे रक्खे हुए थे। उस भाई ने कहा, यह बड़ा अच्छा है। इधर रामनगर, उसके पास जानकी टेकरी, लक्ष्मण टेकरी और हनूमान टेकरी। मैंने कहा, 'रामनगर' नाम तो राम नायडू के नाम पर से पड़ा है।" लेकिन उस राम नायडू को अब कौन

जानता है ? वह तो राम में डूब गया । इन कंबख्तों के बाप अपने लड़कों को भगवान का ही नाम दे देते हैं ।

एक नाटक कंपनीवाला मेरे पास आकर कहने लगा, नाटक के एक खेल का पैसा मैं आश्रम को देना चाहता हूं । मैंने कहा, पैसे तो वैसे मैं ले लेता, क्योंकि किसी पैसे पर नाटक कंपनी का नाम थोड़े ही लिखा होता है । लेकिन अपने पैसों का परिचय दिए बगैर आप दे देते तो मैं ले लेता, अब नाटक कंपनी के नाम से मुझे पैसे नहीं चाहिए ।

मतलब, जिस पैसे को स्वीकार करने से पाप की प्रतिष्ठा बढ़ती है या दोषी जीवन का रंग चढ़ना संभव है, ऐसा पैसा नहीं लेना चाहिए । लेकिन बतौर प्रायश्चित्त के कोई देगा तो मैं ले लूंगा । हर एक मनुष्य पुण्य करता है और पाप भी करता है । दूसरों के पाप-पुण्यों का फैसला करनेवाला काजी बनना मेरा काम नहीं है । गांधीजी के स्मारक फंड में जो लोग पैसा देंगे उनमें श्रीमान् भी होंगे, लेकिन गरीब भी बहुत होंगे । गांधीजी का तरीका ही यह था कि वे गरीब के पास से भी पैसा जमा करते थे, और उसीको महत्त्व देते थे । और आखिर श्रीमान् का पैसा भी गरीबों का ही तो है ! गरीबों से उसने लूट लिया था । तो उसको भी मैं अहिंसक तरीके से क्यों न लूटूँ । उसके पैसे का उपयोग जब हम शुद्ध काम में करते हैं तो उसको भी हम शुद्ध कर देते हैं । "अमेध्यादपि काञ्चनम्" कहा ही है । कीचड़ से भी कांचन को लेना यह तो सज्जनों की रीति ही है । पापी का पैसा पुण्य-कार्य में लगाने से उसके पाप का भी छेदन हो जायगा । मिलवालों से लिया हुआ

पैसा जब मैं खादी-काम में लगाता हूं तब मिलों की हस्ती पर ही मैं हमला करता हूं। हमारे समाजवादी मित्र, 'मिलें देश की मिल्कियत बननी चाहिए' ऐसा कहते हैं। मैं भी यह चाहूंगा। लेकिन मैं उनसे कहता हूं, वह तो जब होगा तब होगा, लेकिन तबतक क्या करोगे? तबतक मिल का कपड़ा पहनकर क्या अपने हाथों से उनको मदद देते रहोगे? हम सब खादी पहनेंगे तो उनकी मिलें ही टूट जायंगी। फिर वे शरण आयंगे। उसके बाद मिलों की व्यवस्था कैसी करनी चाहिए यह मैं उनको समझाऊंगा।

प्रश्न : आठ घंटे चरखा चलाने से जो पैसा मिलता है उतने में कत्तिनों का गुजारा नहीं होता, इसलिए लोग चरखा नहीं चलाते, पूरी रोजी मिलने लगे तो शायद सब देहातों में चरखे चलने लग जाएंगे।

उत्तर : इसका जवाब बिलकुल सरल है। मैं दिन में घंटा डेढ़ घंटा रोज घूमता हूं। अगर मैं आठ घंटे भी घूमूं तो क्या उससे मुझे रोजी मिलनेवाली है? घूमने से हवा खाने को मिलेगी, रोटी कैसे मिलेगी? अगर मैं आम बोता हूं तो उसमें से केले कैसे पाऊंगा? मेरे कहने का मतलब यह है कि सूत कातने से कपड़ा मिल सकता है, रोटी कैसे मिलेगी? चरखा-संघ ने चरखे से रोटी का संबंध कुछ जोड़ दिया है। लेकिन चरखे का मुख्य काम रोटी देना नहीं है, कपड़ा देना है। और यह कोई छोटी बात नहीं है। लोग कहते हैं कि मनुष्य की पहली आवश्यकता अन्न है और दूसरी वस्त्र। लेकिन एक तरह से वस्त्र को पहली जरूरत समझना

चाहिए। हम एकाध दिन फाका तो कर लेते हैं, लेकिन नग्न एक दिन भी नहीं रहते। कपड़ा ठंड से और हवा से बचाता है इतना ही नहीं, वह हमारी लज्जा की भी रक्षा करता है, और यही कपड़े का आज के समाज में मुख्य उपयोग है। वह मनुष्य की सभ्यता की निशानी बन गया है। इस लिहाज से कपड़े को मनुष्य की पहली आवश्यकता समझनी चाहिए। वह चरखा पूरी कर देता है। इससे अधिक चरखे से क्या अपेक्षा रखेंगे ? मनुष्य की नग्नता को ढांकना यह चरखे का दावा है।

प्रश्न : खादीभंडार में खादी खरीदनेवालों के लिए सूत-शर्त रक्खी गई है। लेकिन ईमानदारी से खुद का कता सूत देनेवाले बहुत कम लोग भंडार में आते हैं। इस सूत-शर्त को क्यों न हटा दिया जाय ?

उत्तर : आपकी तसल्ली के लिए पहले तो मैं कह देता हूं कि चंद रोज में खादी-बिक्री पर से सूत-शर्त उठ जायगी।

लेकिन मैं आप लोगों से कह देना चाहता हूं कि चरखा-संघ के भंडारों में से कपड़ा खरीदने की ही हम सोचते रहेंगे तो खादी टिकनेवाली नहीं है। देहाती लोगों को तो अपने लिए खादी पैदा ही करनी है, जैसे वे अन्न पैदा करते हैं। शहरवाले अन्न तो पैदा ही नहीं कर सकते, कम-से-कम वस्त्र तो अपने घरों में पैदा करें ! उससे उनके जीवन में कुछ विविधता भी आएगी। लगातार एक ही काम करते रहने में मनुष्य को आनंद नहीं होता। वे अगर अपने घर में चरखा चलाएंगे तो उनके लिए वह एक आनंद का साधन बनेगा।

उससे कुटुंब में परस्पर सहकार भी बढ़ेगा। एक कपास ओट देगा, दूसरा उसकी पूनी बनाएगा, तीसरा कातेगा, चौथा उसका दुबटा करेगा, इस तरह चलेगा। सूत, दुबटने पर बुनना एक खेल-सा हो जाता है। मैं तो कहूंगा कि फिर घर में एक करघा भी लगा सकते हैं। महीने भर में घर का सारा कपड़ा बुन सकते हैं।

आपके घरों में पानी के लिए पाइप लगे हैं, लेकिन क्या वे बारिश की बूंद की योग्यता रखते हैं? बारिश की बूंद छोटी भले हो, पर वह सब जगह गिरती हैं इसलिए उसकी योग्यता महान् है। चरखे में यही खूबी है। चरखा थोड़ी थोड़ी संपत्ति सब घरों में देगा। अर्थशास्त्र का सबसे महत्त्व का सिद्धांत, संपत्ति की तकसीम ठीक हो, यह है। चरखा अपने आप उस सवाल को हल कर देता है।

पूंजीवालों के पंजे से आप छूटना चाहते हैं तो चरखे को चलाइए। घर में मां बच्चे को चरखे के जरिए देश-प्रेम सिखा सकती है। बचपन में नाश्ते के लिए मैं जाता तो मां मुझे कहती, "पहले तुलसी को पानी दे, फिर नाश्ता मिलेगा।" इसी तरह बच्चे की धर्म-भावना का पोषण किया जाता है। (तुलसी का छोटा पेड़ रहता है। उसको हर रोज पानी डालने में हिंदू-कुटुंब धर्म-भावना समझता है) वैसे ही हर रोज मां बच्चे को देश के लिए चरखा कातने को कहेगी तो देश-प्रेम बढ़ेगा। हर रोज परिश्रम में कुछ-न-कुछ हिस्सा लेना है, यह समझ कर कातेंगे तो गरीबों से हमारा अनुसंधान रहेगा।

प्रश्न : आजादी मिलने के पहले लोगों में कांग्रेस के लिए जो प्रतिष्ठा थी वह अब नहीं रही है। लोगों के पास विधायक कार्य लेकर हम जाते हैं तो वे कहते हैं कि अब अपनी सरकार है, वह पैसा भी खर्च कर सकती है जो काम आप चलाना चाहते हैं, सरकार की मारफत चलाइए।

उत्तर : कांग्रेस की प्रतिष्ठा पहले क्यों थी ? इसलिए कि कांग्रेस में उस समय त्याग की बात थी। हम अब त्याग को भूल गए हैं। आजादी तो हमने हासिल की, लेकिन अब उसे खोने के कार्यक्रम की हम सोच रहे हैं। हमने समझा हमारी पूर्णिमा तो हो गई, अब क्या करना ? तो अमावस्या की ओर हम बढ़ रहे हैं। कांग्रेस में अब भोग की बात आने लगी है। सरकार के पास बहुत-सा पैसा पड़ा है, यह समझना भी गलत है। अंग्रेजों ने हिंदुस्तान को यह दूकान तब सौंपी जब वह गिर चुकी थी। उसकी 'गुड् विल' नेकनामी नहीं बल्कि 'बैंड विल' बदनामी हमें मिली है। इसलिए अपनी सरकार के दोष ही निकालने बैठेंगे तो बहुत निकल आयेंगे। इतना विश्वास रक्खो कि अपने में से अच्छे लोग चुनकर हमने सरकार में भेजे हैं। उनके काम की पूर्ति हमें करनी चाहिए।

वह पूर्ति कैसे हो सकती है ? कांग्रेस का यह दावा था कि हिंदुस्तान में गरीबों का राज कायम करेंगे। हमें जो आजादी मिली है उसे गरीबों के पास पहुंचाना है। सरकार के पास कितना पैसा है ? तीस करोड़ लोग हिंदुस्तान में हैं। उस हिसाब से फी आदमी सरकार कितना खर्च कर

सकती है ? सार्जंट-कमेटी ने बच्चों की पढ़ाई का एक ४० साल का प्रोग्राम बनाया। उसमें खर्च इतना बतलाया कि वह प्रोग्राम अमल में लाना नामुमकिन था। गांधीजी ने कहा, "शिक्षा का यह तरीका ही गलत है। बच्चा शिक्षा पाते समय अगर निकम्मा रहता है तो शिक्षा पाने के बाद भी वह निकम्मा ही रहेगा। शिक्षा के पहले तो वह निकम्मा था ही, शिक्षा पाते हुए भी निकम्मा रहा, तो शिक्षा पाने के बाद भी वैसा ही रहेगा।" इसलिए उन्होंने फिर ऐसा तरीका सुझाया, जिससे बच्चा तालीम पाते-पाते तालीम के खर्च का बड़ा हिस्सा निकाल सके। वह तरीका भी ऐसा कारगर कि उससे बच्चे को तालीम भी अच्छी मिले। उद्योग के जरिए तालीम अच्छी दी जाती है, इसमें क्या शंका हो सकती है ? लेकिन कुछ लोग पूछते हैं, "आप तो बच्चों से मजदूरी करवाते हैं।" मैंने पूछा, "तो फिर क्या यह करूं, कि बच्चा चक्की तो घुमाता रहे, लेकिन अंदर गेहूं न डाले ? बच्चा अगर कुछ पैदा करता है तो क्या पाप करता है ? बच्चा काम करते-करते तालीम भी पाएगा और कुछ पैदा भी करेगा।

संपत्ति के उत्पादन में हर एक का हिस्सा होना चाहिए। तभी हिंदुस्तान टिकेगा। रवि बाबू ने कहा है, "संपत्ति का विभाजन हम सब करते हैं, लेकिन गुणन का भार चंद लोगों पर पड़ता है।" गांधी जी ने संपत्ति के गुणन का आसान तरीका बताया, चरखा और ग्रामोद्योग। लेकिन मैं चरखे की बात करता हूं तो यहां के शरणार्थी कैंपवाले पुरुष कहते हैं "यह तो स्त्रियों का काम है।" रसोई करना भी पुरुषों

का काम नहीं, रसोई खाना पुरुषों का काम है। वाह रे पुरुष ! रसोई करना स्त्रियों का काम और खाना पुरुषों का काम, ऐसा ही भगवान को मंजूर होता तो उसने स्त्रियों को चार हाथ दिए होते और पुरुषों को दो मुंह दिए होते। लेकिन उसने जो किया सो किया। वैसे ही आटा पीसने का काम है। घर में आटा पीसने की बात यहां दिल्ली में मैं करूंगा तो मुझे शायद लोग पागल ही समझेंगे। लेकिन मैं देखता हूं कि दिल्लीवाले भी रोटी खाते हैं, जैसे देहातवाले खाते हैं। "न वै देवा अश्नन्ति, न पिबन्ति, अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति" ऐसा दिल्लीवालों का हाल होता तो उनको चक्की चलाने को कहने में मैं डरता। लेकिन वैसा नहीं है। इसलिए यहां भी मैं घर में आटा पीसने की बात कहूंगा। घर में आटा तैयार होगा, घर में कपड़ा पैदा होगा तो घर में संपत्ति रहेगी। यही ग्रामोद्योग का प्रोग्राम है। उसे चलायंगे तभी गरीब जनता स्वतंत्र होगी।

स्वतंत्र वही हो सकता है जो अपना काम आप कर लेता है। लोकमान्य तिलक ने हमको उत्साहित करने के लिए कहा था "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है" लेकिन दरअसल अगर वह जन्मसिद्ध हक होता तो जन्म लेते ही हमें वह मिल जाता। लेकिन हम देखते हैं कि बच्चे का जन्मसिद्ध हक तो परतंत्रता है। हर बात के लिए उसे मां-बाप पर निर्भर रहना पड़ता है। हमें समझना चाहिए स्वतंत्रता जन्मसिद्ध हक नहीं, कर्म-सिद्ध हक है।

यह एक क्रांतिकारी कार्यक्रम है। उसमें हवा बदलने

की बात है। सरकार अकेली वह नहीं कर सकेगी। वह हो सके तो उसमें मदद पहुंचाएगी, बाधा नहीं डालेगी उतना भी मैं काफी समझूंगा। यह काम हमें करना है। वह हम करें, और सरकार के दोष न ढूंढ़ें। वे तो बिना ढूंढ़े ही मिलेंगे। यह घर हम सबका है ऐसा मानकर एक दूसरे के काम की पूर्ति करनी चाहिए।

प्रश्न: वर्धा में अभी आपने जो सर्वोदय समाज कायम किया है उसका सदस्य कौन हो सकता है? उसके लिए नियम क्या हैं? आदि बातें जानना चाहता हूं।

उत्तर: यह सवाल ठीक पूछा। सर्वोदय समाज यानी मानव-समाज। उसका एक ही उद्देश्य है—सबकी उन्नति करना और उसके लिए जो भी साधन इस्तेमाल किये जायं वे सत्य-अहिंसायुक्त हों। अपने निजी और सामाजिक जीवन में और सार्वजनिक कार्यों में कभी झूठ और हिंसा का उपयोग न करें। जो इस उसूल को मानते हैं वे सब इस समाज के सेवक हैं। इस समाज में न हुकूमत है, न कृत्रिम संगठन की बात है और न इसका कोई चुनाव ही है। इस समाज का सदस्य जो भी काम करेगा, अपने नाम से करेगा। वह अकेला भी काम कर सकता है, और संस्था बना कर भी मार्ग-दर्शन के लिए कुछ काम बताए हैं उनमें से जो काम उसे अनुकूल होगा वह करेगा। और भी जो काम वह करना चाहे, कर सकता है। अगर वह सत्य-अहिंसा की मर्यादा में रह कर काम करता है तो वह सर्वोदय-समाज का सेवक है। इसलिए हमें आत्म-संशोधन करना चाहिए, दिल को

टटोलना चाहिए। आज तक जो हुआ सो हुआ। अब इससे आगे कभी असत्याचरण नहीं करूंगा, हिंसा नहीं करूंगा, यह प्रतिज्ञा उसे लेनी है। जब इस तरह प्रतिज्ञा करने के लिए लोग तैयार हो जाएंगे तो यह सर्वोदय-समाज पृथ्वी पर आ जायगा, नहीं तो स्वर्ग में तो वह पड़ा ही है।

प्रश्न : हिंदू-मुसलिम एकता के लिए हम प्रयत्न करते हैं। लेकिन मुसलमान गुंडे आजकल फिर मुहल्लों में नारे लगाने लगे हैं। इस स्थिति में हम क्या करें ?

उत्तर : जहां ऐसा हो रहा हो वहां हमें पहुंचना चाहिए। लेकिन पहले यह समझ लो कि गुंडे सिर्फ मुसलमानों में ही हैं, ऐसी बात नहीं है। हिंदुओं में भी गुंडे लोग होते हैं। गुंडों की अपनी एक अलग जमात है। इसलिए जिस तरह हम हिंदू गुंडों का बंदोबस्त करेंगे वैसे ही मुसलमान गुंडों का भी करें। लेकिन किसीको पहलेसे ही गुंडा न समझें। वहां पहुंच-कर ठीक जांच करें और जब निश्चित पता चल जाय तो सरकार की मारफत या गांववालों की मारफत उनका बंदोबस्त करें।

प्रश्न : आजकल शरणार्थियों को घरों की बड़ी तंगी है। किसीके घर में जगह है तो वह उनसे पगड़ी मांगता है। उनके पास पैसा भी नहीं है। जबतक मकानों की व्यवस्था नहीं होती तब तक शरणार्थियों को दिल्ली से जाने के लिए हम कैसे कहें ?

उत्तर : समस्या कठिन तो है। उसका हल एक मिनिट में मैं यहां नहीं बता सकूंगा। इस विषय में सरकार तो कोशिश कर ही रही है। लेकिन दिल्ली के नागरिक इसमें क्या कर

सकते हैं यह मैं बता दूं। दिल्ली के नागरिक शरणार्थियों में जाएं, उनसे परिचय करें, उनके साथ बैठकर उनके दिल की बातें समझ लें। परिचय के बाद जो लोग अपने स्वभाव के अनुकूल मालूम हों उनको बतौर पड़ोसी के अपने पास रहने की जगह दें। दया के काम हर एक को करने चाहिएं। मिलिटरी का जैसे कोई विभाग होता है वैसे दया का महकमा खोलकर हम निश्चित होकर नहीं बैठ सकते। हर एक के दिल में दया रहनी चाहिए। शरणार्थियों को अपने घर में स्थान देने में कुछ खतरा भी हो सकता है। लेकिन विवेक से काम लेना चाहिए और खतरा उठाना चाहिए। बिना खतरा उठाए हम कोई भी बड़ा काम नहीं कर सकेंगे।

श्री जैन महावीर मदिर, दिल्ली

४-४-४८

: ५ :

सच्चा धर्म

आज आप लोगों को देख कर मुझे बहुत खुशी हुई है, क्योंकि आप लोग देहाती हैं और मैं भी देहात का हूं। मैं जब कभी शहर में जाता हूं तो लगता है कि किसी दूसरे के घर में आ गया हूं। लेकिन देहात में अपना घर महसूस करता हूं। दूसरी खुशी इस बात से हुई है कि यहां औरतें भी सभा में आई हैं। ऐसा ही होना चाहिए। स्त्री और पुरुष संसार

की गाड़ी के दो पहिए हैं। संसार में सब काम दोनों को मिल कर करने चाहिएं। विद्या प्राप्त करनी हो, धर्म का आचरण करना हो, यात्रा करनी हो, गांव का काम करना हो तो स्त्री और पुरुष मिल कर ही करें।

आप लोगों को एक बात मैं शुरू में बता दूं। आप अपने देहातों को शहर की हवा से बचाइए। अभी जो बुराइयां हुई हैं वे सब शहर की हवा से हुई हैं। देहात के अनपढ़ और गरीब लोग उसमें फंस गए हैं। देहातों में शहर से लोग आते हैं, उन्हें बहकाते हैं, उनमें फूट डालते हैं और झगड़े फैलाते हैं। शहरवाले आकर यदि ऐसी बातें करने लगें तो हम उनसे साफ कह दें कि "मेहरबानी करके आप यहां से जाइए। शहर के झगड़े हमारे यहां न लाइए।"

गांववालों को हाथ की पांच अंगुलियों की तरह रहना चाहिए। हाथ की पांचों अंगुलियां समान थोड़े ही हैं? कोई छोटी है, कोई बड़ी है। लेकिन हाथ से किसी चीज को उठाना होता है तब पांचों इकट्ठी होकर उठाती हैं। हैं तो पांच, लेकिन हजारों काम कर लेती हैं; क्योंकि उनमें एका है। उनमें अगर आपस में झगड़ा चलता तो कुछ काम ही नहीं हो पाता। हमारे यहां कहावत है न? "पांच बोले परमेश्वर"। गांव के पांच लोग जब हमराय होकर बोलते हैं तब वह परमेश्वर ही बोलता है। लेकिन पांच में से तीन एक बात कहें और दो दूसरी बात कहें तो वह परमेश्वर की वाणी नहीं बनती। इसलिए अगर गांव का भला चाहते हैं तो सब मिल-जुल कर काम करेंगे, पहले यह बात पक्की कर लीजिए।

मैंने सुना कि यहां हिंदुओं के साथ कुछ मुसलमान भी रहते हैं। यह सुनकर खुशी हुई। लेकिन मुसलमानों के साथ-साथ कुछ सिख, पारसी और ख्रिस्ती भी होते तो मुझे और खुशी होती। भगवान का भजन करने का हर एक का तरीका अलग-अलग है, और हर एक के तरीके में कुछ खूबियां भी हैं। जब ये सब गांव में अपने-अपने तरीके से भजन करते हैं और प्रेम से रहते हैं, तो बड़ा आनंद आता है। सितार में सातों सुर अलग-अलग होते हैं, लेकिन सातों के मिलने पर सुंदर संगीत बन जाता है। एक ही सुर रहता तो उस सितार को सुनने में क्या आनंद आता?

हिंदुओं में भी देखो न, विष्णु की पूजा, शंकर की पूजा, गणपति की पूजा, देवी की पूजा, आदि कितने ही देवताओं की पूजा चलती है। लोग कहते हैं 'यह क्या देवों का बाजार लगा दिया?' मैं कहता हूं "रुचि अलग-अलग है तो बाजार भी होना चाहिए। भोजन में रोज रोटी ही मिलती रहने पर कोई दूसरी चीज खाने की आपको इच्छा होती है या नहीं? उसी तरह अगर अलग-अलग नामों से परमेश्वर की पूजा चली तो गांववालों का उतना ही आनंद बढ़ गया समझो। परमेश्वर के अनंत रूप हैं, अनंत नाम हैं। किसीके चार लड़के होते हैं तो चारों के नाम भी अलग-अलग रक्खे जाते हैं। वैसे भगवान के एक रूप का नाम है विष्णु और एक का नाम है कृष्ण। तो कोई विष्णु का नाम लेगा, कोई कृष्ण का नाम लेगा। उसमें हमारा क्या बिगड़ता है? सारे भक्ति तो एक ही भगवान की करते हैं न? हरेक अपनी-अपनी रुचि

के अनुसार नाम लेता है तो हृदय को तसल्ली होती है।

इसलिए मुसलमान अगर अपने तरीके से भगवान का भजन करते हैं तो हम क्यों उनको कहें कि तुम चोटी रख कर हिंदू बन जाओ? हिंदू बनने का भी बड़ा आसान तरीका लोगों ने निकाला है। कहते हैं कि सूअर की हड्डी चूस ली तो हो गया हिंदू! इतना आसान अगर हिंदूधर्म होता तो फिर ऋषि-मुनियों की जरूरत ही क्या थी? यह क्या हिंदू-धर्म है? हिंदू-धर्म की यह घोर निंदा है। हिंदू-धर्म कभी किसी को अपना धर्म छोड़ने को नहीं कहता। गीता में भगवान ने कहा है कि जिसका जो धर्म है, वही उसके लिए सबसे श्रेष्ठ है। अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए हर एक को अच्छा इन्सान बनना चाहिए। आज इन्सानियत हिंदुओं ने भी छोड़ी है और मुसलमानों ने भी। दोनों झूठ बोलते हैं, खून करते हैं, गरीबों को चूसते हैं, और फिर भी उनका धर्म नहीं बिगड़ता। धर्म की असली बात छोड़ कर धर्म के नाम पर धर्म-विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। दया, सत्य और प्रेम यही सच्चा धर्म है। इन्सानियत बढ़ाना, प्रेम रखना, झगड़ों को मिटाना, यही धर्म का कार्य है।

बखतावरपुर, दिल्ली

६–४–४८

: ६ :

गरीबी अपनावें

•

शाम का समय, जब सूर्यनारायण अस्ताचल की ओर जाते हैं, और हमारे जीवन का एक हिस्सा समाप्त होता है, बहुत पवित्र है। ऐसे समय चिंतन करना, भगवान का नाम लेना, और सबका मिल कर उपासना करना अच्छा लगता है। जो भाई यहां आये हैं, उनसे मैं प्रार्थना करूंगा कि वे इस उपासना में नियमित आया करें; और अपवे साथ मित्रों को भी लाया करें क्योंकि यह ऐसा मिष्ट भोजन है, जिसमें अगर हम शरीक होते हैं तो दूसरों को भी हमें दावत देनी चाहिए।

यह राष्ट्रीय सप्ताह कहलाता है। हमारे लिए पारमार्थिक काम करने का यह सप्ताह है। २९ साल पहले का जिक्र है, जब कि, अभी जो नौजवान हैं उनमें से बहुतों का जन्म भी नहीं हुआ था, सारे हिंदुस्तान में इस सप्ताह ने प्राण का संचार कर दिया था। तब से हर साल हम यह सप्ताह मनाते हैं।

इस साल गांधी-स्मारक-कोष के लिए पैसे इकट्ठा करने का काम इस सप्ताह में शुरू किया गया है। अच्छा है, जो लोग पैसा देंगे, कुछ त्याग-भावना सीखेंगे। लेकिन असली काम पैसे से नहीं होगा। सेवा-कार्य का पैसे से कम-से-कम संबंध है। पैसे से सार्वजनिक काम बिगड़ भी सकता है। उसका बहुत जागृत होकर उपयोग करना पड़ता है। सेवा के लिए पैसे की जरूरत नहीं होती। जरूरत है अपना संकुचित जीवन

छोड़ने की, गरीबों से एकरूप होने की।

पुरानी कहानी है। याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियां थीं। एक सामान्य, संसार में आसक्ति रखनेवाली और दूसरी विवेक-शाली, जिसका नाम मैत्रेयी था। याज्ञवल्क्य को लगा कि अब घर छोड़ कर, आत्मचिंतन के लिए बाहर जाना चाहिए। जाते समय उन्होंने दोनों पत्नियों को बुलाया और कहा, "अब मैं घर छोड़ कर जा रहा हूं। जाने से पहले जो भी संपत्ति है, आप दोनों में बांट दूं।" तब मैत्रेयी ने पूछा, "क्या पैसे से अमृत-जीवन प्राप्त हो सकता है ?" याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया, "नहीं ! अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन"।— वित्त से अमृतत्व की आशा करना बेकार है। उससे तो वैसा जीवन बनेगा, जैसा कि श्रीमानों का होता है। वह तो मृत-जीवन है। अमृत-जीवन की अगर इच्छा है तो आत्मा की व्यापकता का अनुभव करो, सबकी सेवा करो, सबसे एकरूप हो जाओ।"

कांग्रेस ने दावा किया था कि वह गरीबों का राज्य चाहती है। अगर हम गरीबों का राज्य चाहते हैं, गरीबों की सेवा करना चाहते हैं तो हमें गरीबों की मनोवृत्ति को समझना चाहिए, उनसे एकरूप होना चाहिए। वीर-पूजा जैसे वीर बनकर ही हो सकती है, वैसे ही गरीबों की सेवा गरीब बन कर ही हो सकेगी। इसलिए इस सप्ताह में हम गरीब बनने की कोशिश करें।

कल की बात है। मैं कुरुक्षेत्र गया हुआ था। आप जानते हैं कि आजकल मैं शरणार्थियों की सेवा में घूम रहा हूं।

कल कुरुक्षेत्र की बारी थी। पंडित जी के साथ गया था। कुरुक्षेत्र, कई पवित्र भावनाओं का स्मरण दिलाता है। गीता का स्मरण तो होता ही है। क्योंकि वहीं पर भगवान ने अर्जुन को गीता का संदेश दिया था। उसकी जगह भी वहां बताते हैं। उसे भी देखने मैं गया था। मेरा दिल भर आया। उस स्थान में खास तो कुछ नहीं था। कुछ पेड़ थे और वही पंचभूत, जो सारी दुनिया में भरे हैं वहां भी थे। परमेश्वर भी, अगर हम उसे देखते हैं, वही था जो सब जगह मौजूद है, लेकिन भावना की बात होती है, जिससे कहीं कुछ अनुभूति आती है। उसी कुरुक्षेत्र में आज गीता की शिक्षा से उल्टी बात चल रही है। गीता ने सिखाया है कि बिना काम किए खाने का मनुष्य को अधिकार नहीं। कर्म ही मनुष्य के जीवन को पवित्र और अहिंसक बनाता है। लेकिन वहां तो महीनों से मुफ्त रसद (राशन) दी जा रही है। मैंने सोचा अगर इतने लोगों को यका-यक काम देना मुश्किल हो रहा है तो अगर उन्हें चक्कियां दी जातीं तो कम-से-कम अपना अनाज तो वे पीस ही सकते थे, फिर तैयार आटा उन्हें क्यों दिया जा रहा है? यह सादी बात किसीको नहीं सूझी, क्यों? इसलिए कि हम जो वहां काम कर रहे हैं उनके ही जीवन में चक्की कहां आई है? मनुष्य को अपने जीवन के बाहर की कल्पना करना मुश्किल होता है। इसीलिए मैंने कहा है कि गरीबों की सेवा करने के लिए गरीब बनना चाहिए। तुलसीदासजी ने अपने भजन में गाया है "नाथ गरीब-निवाज हैं, मैं गही न गरीबी"—हे नाथ! आप तो गरीबों का पालन करनेवाले हैं। लेकिन मैंने गरीबी

को अपनाया नहीं है तो आपके पास मेरा पालन कैसे होगा ?

इसलिए इस राष्ट्रीय सप्ताह में हमें गरीबी का व्रत ले लेना चाहिए। गरीबी का मतलब है शरीर-परिश्रम को अपनाना। शरीर-परिश्रम टालने से ही दुनिया में साम्राज्य-शाही और दूसरी अनेक शाहियां पैदा हुई हैं। उन सबका हमें विरोध करना है तो गरीबी का अपने जीवन में आरंभ कर देना चाहिए। घर में चक्की न हो तो दाखिल कीजिए। चरखा शरीर-परिश्रम के लिए गांधी जी ने बताया, जिसे बच्चा, बूढ़ा, सब कोई चला सकते हैं। गरीबों से तन्मय होने की वह निशानी है। लेकिन अगर हम चरखा कातते हैं, और बाकी का हमारा जीवन वैसा-का-वैसा रह जाता है तो हमारा काम नहीं बनता है। हमें तो मजदूर बनना है, भंगी बनना है, गांव-गांव में जा कर सफाई का काम करना है। इस सप्ताह में ऐसा कुछ आरंभ कर दीजिए। हमें तुलसी-दास जी के जैसी व्याकुलता होनी चाहिए कि कब हम गरीब बनेंगे और कब हमारा ईश्वर से पालन होगा !

राजघाट, दिल्ली

शुक्रवार ९–४–४८

: ७ :

सिंधी विद्यार्थियों से—

मैं आज ही अजमेर पहुंचा हूं। पहुंचते ही विद्यार्थियों

के बीच में बोलने का मुझे मौका मिला, उससे मुझे खुशी हुई। आप सिंध में जो विद्या पाते थे, वही सिलसिला यहां भी चलेगा। मैं तो मानता हूं कि उससे कुछ अच्छा ही चलेगा। आज के जो विद्यार्थी हैं, वे कल के नागरिक होनेवाले हैं। उन पर जिम्मेवारी है कि वे अच्छी विद्या हासिल करें, जिससे उनका और देश का भला हो।

एक बात मैं विद्यार्थियों से कहना चाहता हूं और वह यह कि हिंदुस्तान की विद्या एक ही है और वह है आत्मविद्या। वह सबसे श्रेष्ठ है। उसीकी प्राप्ति के लिए दूसरी सारी विद्याएं हैं। उसीके लिए ब्रह्मचर्याश्रम है। उसीकी प्राप्ति से दूसरी सारी विद्याएं चरितार्थ होती हैं। वरना सब निकम्मी हो जाती हैं। इसलिए आप सिंधी-विद्या, हिंदी-विद्या, गुजराती-विद्या ऐसा भेद न करें। हो सकता है कि सिंधी का उतना उत्तम अभ्यास यहां नहीं हो सकेगा, लेकिन उसके बदले में आप हिंदी का अभ्यास करेंगे तो कुछ खोएंगे नहीं। हिंदी और सिंधी में ज्यादा फर्क भी नहीं है। शाह लतीफ की कविता अगर नागरी में छप जाय तो हिंदीवाले उसे अच्छी तरह पढ़ सकेंगे। मैंने सिंधी का भी थोड़ा अभ्यास किया है। मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि उत्तर हिंदुस्तानवाली मारवाड़ी, पंजाबी, सिंधी आदि भाषाएं एक तरह से हिंदी की बोलियां जैसी हैं। सिंधी और हिंदी दोनों संस्कृत से पैदा हुई हैं। अगर लिपि की रुकावट न रही तो कोई भी सिंधी आठ दिन के अंदर हिंदी सीख सकता है। हजारों शब्द दोनों में समान हैं। क्रियापद भी बहुत-से समान हैं। इसलिए सिंधीवाले

हिंदी का अभ्यास करेंगे तो उन्हें बहुत फर्क नहीं मालूम होगा। सिंधी सीख कर आप अगर सिंधु नदी में प्रवेश करते हैं तो हिंदी सीख कर आप समुद्र में प्रवेश करेंगे। हिंदी सीखने से भारत के व्यापक साहित्य में आपका प्रवेश हो जाता है। उससे आप हिंदुस्तान की अच्छी सेवा कर सकेंगे। हिंदी का उत्तम अभ्यास करके आपको हिंदीवालों में इस तरह मिल जाना चाहिए जैसे दूध में शकर। दूध का नाम लिया जाता है, लेकिन शकर अपना काम करती है। असली चीज तो काम ही है।

सिंधी लोग साहसी होते हैं, देश-परदेश जहां जाते हैं, वहांकी भाषा जल्दी सीख लेते हैं। इसीलिए तो वे उत्तम व्यापार करते हैं। ये गुण यहां भी आप दिखा दें और यहां के वातावरण में एकरूप हो जायं। कहावत है कि रोम में जायं तो रोम जैसा बनना चाहिए। यहांके रीतिरिवाज आपके रीतिरिवाज से कुछ भिन्न हैं। लेकिन यहांपर आपको अपने रिवाज का आग्रह नहीं रखना चाहिए। भारतमाता की सेवा करनी है तो भारतीय बनना चाहिए। सिंधी का प्रेम जरूर रखिए पर सिंधी का अभिमान मत रखिए। प्रेम और अभिमान में मैं फर्क करता हूं। अभिमान रखना ही है तो भारतीय होने का रखिए। उसमें भी दुरभिमान नहीं होना चाहिए। हम सब इन्सान हैं इसको नहीं भूलना चाहिए।

कल से आपको गरमी की छुट्टी मिलनेवाली है। यह छुट्टी केवल अंग्रेजों का अनुकरण है। हमारे अंग्रेज प्रोफेसर गर्मी सहन नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्हें छुट्टी की जरूरत थी। वे विद्यार्थियों को भी छुट्टी दे देते थे। लेकिन ज्ञान

की छुट्टी कैसी ? खाने की कभी छुट्टी नहीं रहती। मनुष्य को अन्न से भी ज्ञान की आवश्यकता अधिक है। गर्मी की लंबी छुट्टी में अंग्रेज प्रोफेसर ठंडी जगह जाते थे, हमारे शिक्षक और विद्यार्थी कहां जानेवाले हैं ? वे तो यहीं घर पर रहेंगे। उससे तो विद्यालय की बिल्डिंग में टेंपरेचर कम रहेगा और अभ्यास में गर्मी का पता भी नहीं चलेगा। इसलिए मेरी राय में छुट्टी की कोई जरूरत नहीं है। अगले साल से इस बात पर सोचिए। अगर छुट्टी देनी है तो बारिश के मौसम में निंदाई (निरौनी) के समय पर दे सकते हैं। जिससे विद्यार्थी खेती में कुछ काम कर सकेंगे। गर्मी में कुछ काम भी नहीं होता है। इसलिए विद्यार्थी यह मांग करें कि हमें अपना जीवन नष्ट नहीं करना है। हमें गर्मी की छुट्टी नहीं चाहिए। विद्या के बिना हम नहीं रहना चाहते। लेकिन अगर छुट्टी रहती है तो मैं विद्यार्थियों से कहूंगा कि वे समय व्यर्थ न गंवाएं। वे अपनी विद्या को बढ़ाते रहें और स्कूल में जो सीखने को नहीं मिला वह इन दिनों में सीखें।

अजमेर
६-४-४८

: ८ :

इस्लाम की सिखावन

आज मैं इस पाक मौके पर आप लोगों में बैठा हूं इससे

मुझे खुशी होती है। हिंदुस्तान में अभी जो हो गया वह बड़े दुःख की बात थी। एक बुरी हवा आई और उसके झोंके में अच्छे भी बुरे बन गए। खुदा करे अब ऐसी हवा आए जिसमें बुरे भी अच्छे हो जायं।

हिंदुस्तान में दुनिया के सब मजहबों की कौमें रहती हैं। हिंदुस्तान ने सब को प्रेम से स्थान दिया है। हमारे कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने गाया है, "हिंदुस्तान इन्सान का एक समुंदर है।" समुंदर में जैसे सब तरफ की नदियां आकर मिलती हैं, वैसे ही यहां भी सब कौमें आकर मुहब्बत से रही हैं। जो कुछ हुआ उससे सबक लेकर अगर हम आगे ऐसी बातें नहीं होने देंगे तो जो हुआ उससे भी फायदा ही हुआ है ऐसा कह सकेंगे। मौलाना साहब ने अभी फरमाया कि—हिंदू, मुसलमान आदि जमातें एक दिल से यहां रहें इसके लिए गांधीजी ने आखिर तक कोशिश की। वही कोशिश आगे भी जारी रहनी चाहिए। हम सब की यही मन्शा होनी चाहिए और वैसे ही काम हमें करने चाहिए।

नौ साल पहले मुझे एक दिन सूझा कि मैं हिंदुस्तान में रहता हूं और खुद को हिंदुस्तानी कहता हूं, तो जैसे हिंदू-धर्म की किताबों का अध्ययन मैंने किया वैसे अपने पड़ोसी मुसलमान भाई जो एक हजार साल से यहां रहते हैं उनके धर्म की किताब का अध्ययन भी करूं। वैसे कुरान शरीफ का अंग्रेजी तरजुमा तो मैं देख गया था। लेकिन उतने से दिल को तसल्ली नहीं होती थी। तब अरबी में ही पढ़ने की सोची। मैं वर्धा के पास एक देहात में रहता हूं। वहां पर जो भी मदद मिल

सकी लेकर दो-तीन साल में मैंने कुरान को कई मरतबा पढ़ लिया। उसके लिए अरबी भाषा भी सीखनी पड़ी। उसका माहिर तो मैं नहीं हूं, लेकिन समझ लेता हूं। मैं मानता हूं कि हमें एक साथ रहना है तो एक दूसरों के धर्म को समझ लेना जरूरी है। इससे बहुत-सी गलतफहमियां दूर हो जाती हैं। मैंने कुरान के अभ्यास से बहुत पाया। कई बातें मुझे मालूम हुई जिन्हें पहले मैं नहीं जानता था। इस्लाम इन्सान-इन्सान में फर्क नहीं करता, दूसरे मजहबवालों से मुहब्बत के साथ रहने को कहता है। इतना ही नहीं, इस्लाम का तो विश्वास है कि "ला न्फर् रीक़ो बैन अहदिम् मिर् रुसुलिह्" —यानी दुनिया में जितने भी रसूल हुए हैं उनमें हम फर्क नहीं करते। कुरान के विचार से परमेश्वर पर भरोसा रखना, हक पर चलना और सब्र रखना यही असली दीन है। खुदा पर भरोसा रखने के साथ-साथ नेक काम करने की बात हर जगह जोड़ दी है। मजहब तो लोगों ने अपने-अपने खयालों के अनुसार अलग-अलग बनाए हैं। लेकिन असली 'दीन' जिसे कहते हैं, एक ही है। जैसे लिबास अलग-अलग पहने जाते हैं लेकिन उनका मकसद एक ही होता है—हवा से शरीर को बचाना, वैसे ही मजहबों की बात है। यही हिंदुस्तान के सब संतों ने जाहिर किया है। सिक्खों के गुरु-ग्रंथ साहब में भी गुरुओं की बानी के साथ दूसरे संतों की बानी ली गई है; जिसमें मुसलमान संत बाबा फरीद की बानी भी है। सब संतों का हृदय एक होता है। सबने हमें सिखाया है कि 'खुदा से डरो, और किसीसे न डरो' न किसीको डराओ।

ईश्वर पर भरोसा रखनेवालों की यही निशानी है।

सरकार ने इस जगह के लिए जो कुछ किया उसके वास्ते आपने उनका शुक्र माना। आपके लिए वह शोभा देता है। लेकिन सरकार ने तो अपना फर्ज़ अदा किया है। यह सरकार भी आपकी है। यह हम सब लोगों का घर है ऐसा समझ कर इसमें जो बुरी बातें दिखाई दें उन्हें हम सब मिलकर साफ करें। मैं हर जगह यही कहूंगा कि हम हिम्मत रक्खें और मुहब्बत रक्खें।

अदचीना, दिल्ली
बीबी नूर के उर्स के अवसर पर
११-४-४८

: ६ :

झगड़ों का सही कारण

दो दिन से मैं यहां शरणार्थी भाइयों से बातचीत कर रहा हूं। उनमें से बहुत सारे सिंध से आए हुए हैं। वहां वे बहुत अच्छी तरह से रहते थे। वहां का सब छोड़कर वे यहां आ पहुंचे हैं। उनका यहां कुछ इंतजाम तो हुआ है, फिर भी वे दुःखी हैं। मैं मानता हूं कि उनके दुःख सही हैं। उनकी शिकायत है कि यहां के लोग उनसे पहले-जैसी सहानुभूति नहीं रखते हैं। इसलिए यहांके लोगों से मैं कहूंगा कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

दूसरों के दुःखों का तबतक हमें पता नहीं चलता जब तक उनकी निगाह से देखना हम नहीं सीखते। इसलिए मैं यहां के भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि वे सिंधी भाइयों की दृष्टि से सोचें। सिंध में वे जैसे रहते थे उस हालत में हम भले ही यहां उनको न रख सकें लेकिन दिल की हमदर्दी तो उन्हें मिलनी ही चाहिए। संकट में मनुष्य को यदि कोई हमदर्दी दिखाता है तो चाहे बाह्य-संकट-निवृत्ति न भी हो तो भी उस के दिल को तसल्ली हो जाती है।

यह तो मैंने यहां के भाइयों से कहा। वैसे ही सिंधी भाइयों से भी मैं कुछ कहना चाहता हूं। उनको समझना चाहिए कि जितनी तादाद में वे यहां आए हैं उसे देखते हुए यहांवालों को, उनका स्वागत करना आसान नहीं है, उनके सामने भी कुछ मुसीबतें हैं। एक शरणार्थी भाई ने कहा मुसीबत क्यों होनी चाहिए ? यहां से भी जो मुसलमान गए हैं, उनके बदले हम आ गए हैं। मैंने कहा, वहां से कुछ आए और यहां से कुछ गए यह तो ठीक है, लेकिन जो गए और जो आए उन दोनों ने मिलकर यहां की समस्या आसान नहीं बल्कि और कठिन बनाई है, क्योंकि जो गए वे कारीगर और मजदूर थे और जो आए वे तिजारत पेशा हैं। यानी जिनकी यहां जरूरत थी वे यहां से गए और जिनकी जरूरत नहीं थी वे आ गए। इस तरह मुश्किल दुगुनी बढ़ गई। इसका एक ही इलाज हो सकता है। जो भाई यहां आए हैं वे अगर कारीगर बनने की तैयारी और हिम्मत रखते हैं तो उनका पूरा स्वागत हो सकेगा। मेहमान जब दो दिन के लिए आता है तो उसका

उत्तम स्वागत होता है, लेकिन जब वह घरवाला बन जाता है तो घर के कामों में उसे मदद देनी चाहिए, नहीं तो घर की मुसीबत बढ़ती है और स्वागत कम होता है। मैं जानता हूं कि शरणार्थी भाइयों में कई ऐसे हैं जिन्होंने व्यापार के सिवा आजतक और कुछ नहीं किया और उनकी उम्र भी अधिक है। ऐसे लोगों को कुछ व्यापार मिल ही जाना चाहिए और अगर एक ही शहर में सब एक साथ रहने का आग्रह न रखें और अनेक शहरों में विभाजित हो जायं तो मिल भी जायगा। लेकिन जो नौजवान हैं उन्हें तो कारीगरी के लिए और शरीर परिश्रम के लिए तैयार होना ही चाहिए।

यह मैं केवल सिंधी नौजवानों को ही नहीं कहता। सारे हिंदुस्तान की यह समस्या है। यहां अगर परिश्रम-निष्ठा और उत्पादन नहीं बढ़ेगा, और ज्यादातर शिक्षित लोग व्यापार और नौकरी ही करना चाहेंगे, तो हिंदुस्तान में लड़ाई-झगड़े मिटनेवाले नहीं हैं। बल्कि मैं तो स्पष्ट देख रहा हूं कि वे बहुत बढ़नेवाले हैं। वे कभी हिंदू-मुस्लिम झगड़े का रूप पकड़ेंगे तो कभी सिंधी-मारवाड़ी झगड़े का और कभी और कोई रूप उनका होगा। लेकिन वह रूप बाहरी होगा। झगड़े का असली कारण तो यही है कि गरीब चूसे जा रहे हैं, उत्पादन का भार उन पर पड़ रहा है। खाना भी उनको पूरा नहीं मिलता है, जब कि दूसरे लोग खाना पूरा खा रहे हैं। इतना ही नहीं बल्कि उत्पादन में हिस्सा न लेते हुए आराम की जिंदगी चाहते हैं, संचय भी करना चाहते हैं। इतने बड़े देश में जहां आज ३० करोड़ की आबादी है, जहां की आबादी और भी

बढ़ रही है, जहां मुश्किल से मनुष्य के पीछे एक एकड़ खेती है वहां अगर परिश्रम-निष्ठा और उद्योग नहीं बढ़ता है तो सुख कभी मिलनेवाला नहीं है। स्वर्ग में सुख मिलता है, पालकी में बैठने को मिलता है, ऐसा लोग कहते हैं। मैं कहता हूं ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए जहां पालकी दूसरों के कंधों पर उठाई जाती है; वह स्वर्ग मेरे लिए निकम्मा है। मैं तो ऐसा स्वर्ग चाहता हूं जहां हर एक मनुष्य अपने पांव से चलता है, अपने हाथ से काम करता है, जहां कोई किसीके कंधों पर नहीं बैठा है, कोई किसीको लूटता नहीं है। वेद भगवान ने कहा है "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समा:"--कर्म करते-करते सौ साल जीने की इच्छा रखो। कर्म करनेवाला ही जीने का अधिकारी है। जो कर्म-निष्ठा छोड़कर भोगवृत्ति रखता है वह मृत्यु का अधिकारी बनता है। कुछ लोगों की आयु अधिक कष्टों के कारण क्षीण हो रही है, और कुछ की अधिक आराम में रहने के कारण बदहज्मी से। समाज की यह व्यवस्था उचित नहीं है। भगवान ने हमें हाथ दिये हैं, बुद्धि दी है, इन दोनों का ही उपयोग करके जब हर कोई उत्पादन में हिस्सा लेगा तभी देश सुखी होगा; वरना आगे इतनी बड़ी समस्या खड़ी होनेवाली है कि जिसके सामने आज की शरणार्थियों की समस्या--जो कि कम नहीं है--बहुत ही छोटी मालूम होगी। भगवान से मैं प्रार्थना करता हूं कि वह हमे सूझ दे और बचाए।

अजमेर

११-४-४८

: १० :

सीखो और सिखाओ

मैं यहां आ गया इस बात की मुझे खुशी है। डाक्टर जाकिर हुसेन साहब से १९३७ में, जब हम सब मिल कर नई तालीम के बारे में सोच रहे थे, पहली मरतबा मेरा परिचय हुआ। संस्कृत में कहावत है कि "सज्जनों के साथ सात कदम चलने से भी उनसे जिंदगी भर के लिए दोस्ती बन जाती है।" इसीसे हिंदुओं की शादी में लड़के और लड़की को सात कदम साथ चलाने की एक विधि बन गई है—जिसे सप्तपदी कहते हैं। पहले परिचय में ही डाक्टर साहब की भलाई और दिमाग की सफाई ने मुझे अपनी ओर खींच लिया। तबसे मेरे दिल में रहा है कि मैं जामिया में हो आऊं। आज जैसे आया हूं उस तरह नहीं, बल्कि चंद रोज रहने के लिए। बीच में जब मैं कुरान का अभ्यास करता था, तब यहांकी विशेष याद आई। क्योंकि अगर मैं यहां आकर रहता तो, यहां पवनार में रहते जो काम महीनों में नहीं हो सकता था, चंद दिनों में हो जाता। लेकिन मैं अपना स्थान नहीं छोड़ सकता था। इसलिए वहींके प्रायमरी स्कूल के एक टीचर की मदद ले कर कुरान पढ़ना सीखा। उसने पढ़ना तो सिखा दिया, लेकिन अरबी के मानी वह नहीं जानता था। उसके लिए फिर मैंने किताबों से मदद ली।

आपके यहां रहने का मौका यद्यपि नहीं मिला, फिर भी

दिल तो आपके साथ रहा है। क्योंकि नई तालीम के काम को मैं अपना काम मानता हूं। बचपन से आजतक मैं तालिब-इल्म रहा हूं। जेल में करीब पांच सालतक रहना हुआ। वहां और तो बहुत बातें होती थीं, लेकिन दिन का काफी समय मैं हिंदुस्तान की अलग-अलग भाषाएं सीखने में देता था। जब कभी विद्यार्थियों के साथ बैठने और बोलने का मौका आता है तब लगता है कि मैं भी उनके जैसा छोटी उम्रवाला होता तो कितना अच्छा होता! लेकिन वह तो होनेवाली बात नहीं है। जैसे-जैसे दिन जाते हैं, आयु बढ़ती ही जाती है। वह छोटी होती जाय ऐसी कोई तरकीब नहीं निकली है।

विद्यार्थियों को मैं हमेशा कहता हूं कि आप सीखने के साथ-साथ सिखाते भी जाइए। जब मैं हाईस्कूल में था तब अपने साथियों को गणित सिखाता था। वे अपने सवाल मेरे सामने रखते थे और मैं उनकी मदद करता था। मेरा यह रोज का धंधा ही बन गया था। आजकल दूसरे कामों में पड़ा रहता हूं, फिर भी थोड़ा समय सिखाने के लिए निकाल ही लेता हूं। उससे दिल को तसल्ली होती है। जिस दिन सिखाने का मौका नहीं मिलता उस दिन फाका-सा हुआ लगता है। मैं तो कहता हूं कि सिखाना यही सीखने का उत्तम तरीका है। 'इल्म देने से दूना होता है' यह तो मशहूर कहावत है। पैसे के बारे में लोगों में उलटी धारणा है। लेकिन वह गलत है। पैसा भी देने से बढ़ता है। अपने पास रखने से वह घटता है। कुरान में एक जगह कहा है, 'सूद से नहीं, दान से पैसा बढ़ता है'। अपने पास आया हुआ पैसा फौरन दूसरे के पास

भेज देना चाहिए। फुटबाल के खेल में अपनी तरफ आया हुआ बाल हम अपने ही पास रक्खेंगे तो खेल कैसे चलेगा? हम दूसरे के पास फेंकें, वह तीसरे के पास फेंके, इस तरह फेंकते जाने से ही फुटबाल का खेल अच्छा चलता है। पैसा और इल्म दूसरों को देते चलो। उससे दोनों चीजें बढ़ेंगी।

हिंदुस्तान में करोड़ों लोग पढ़ना नहीं जानते। उन्हें सिखाने की बात करते हैं तो पचासों साल की लंबी स्कीमें और अरबों रुपयों का खर्च बतलाते हैं। मैं पूछता हूं 'ऐसा क्यों? जिसको जो आता है वह दूसरे को क्यों नहीं पढ़ाता?' इस तरह करते जायंगे तो थोड़े ही दिनों में देश भर का अज्ञान चला जायगा। सिखानेवाला ऐसा न समझे कि मैं सिखा रहा हूं, वह यही समझे कि मैं सीख रहा हूं। मैं अपने तजुर्बे से कहता हूं कि विद्यार्थियों को जितना मैंने सिखाया है उससे बहुत ज्यादा उनसे सीखा है। मेरी निगाह में वे मेरे उस्ताद होते हैं और उनकी निगाह में मैं उनका उस्ताद होता हूं। इस तरह हम दोनों एक दूसरे के उस्ताद बनते हैं, दोनों अपने गुणों को बढ़ाते हैं।

जामिया के विद्यार्थी यह खूबी सीख लेंगे तो वे देश की उत्तम सेवा करेंगे, जिससे हिंदुस्तान की कायापलट हो जायगी।

जामिया मिलिया, दिल्ली

१२-४-४८

: ११ :

व्यक्तिगत और सामूहिक प्रार्थना

अध्यापक, विद्यार्थी आदि सब मिलकर संध्या समय प्रार्थना करें, यह रिवाज हमारी संस्थाओं में पड़ गया है। एक रिवाज के तौर पर भी यह अच्छी चीज है। लेकिन जब वह केवल रिवाज रह जाता है तब यंत्रतुल्य हो जाता है। वैसा नहीं होने देना चाहिए। उपनिषदों में आया है कि जैसे पक्षी दिन में चारों तरफ इधर-उधर उड़ता फिरता है, लेकिन शाम के समय अपने घोंसले में आकर स्थिर हो जाता है, वैसे जीवात्मा जब संसार के सब तरह के कामों में भटककर थक जाता है तब विश्राम के लिए परमेश्वर के पास पहुंच जाता है। प्रार्थना यानी ईश्वर के पास पहुंचने की इच्छा। हम भगवान की शरण में आए हैं यह भाव प्रार्थना में होना चाहिए। दिन भर जो काम करते हैं वे सब शाम की प्रार्थना में परमेश्वर को अर्पण करते हैं, ऐसी भावना रही तो उसका असर हमारे दिन भर के कामों पर पड़ेगा। और तभी प्रार्थना की असली शक्ति प्रगट होगी। प्रार्थना तो हृदय से ही करनी होती है। फिर भी चूंकि मनुष्य को ईश्वर ने जबान दी है, इसलिए वह उसका भी उपयोग कर लेता है। लेकिन बिना जबान के भी हृदय से सर्वोत्तम प्रार्थना हो सकती है। हमारी जबान भी टूटी-फूटी होती है, इसलिए हम संतों की वाणी का उपयोग करते हैं। लेकिन वह बननी चाहिए हमारे हृदय की वाणी।

निष्काम भाव से दक्षतापूर्वक आलस्य छोड़कर सेवा करने का दिनभर प्रयत्न करते रहें, और शाम को इस तरह की हुई शुद्ध सेवा भगवान को समर्पित कर दें। दिनभर के कामों में कुछ दोष भी दीख पड़ें तो उन्हें भी धोने के लिए भगवान को ही अर्पण करना है। यह समर्पण की विधि बहुत ही उपयोगी है। चित्त-शुद्धि के अन्य साधनों को अगर मैं सोडा या साबुन की उपमा दूं तो इसको जल की उपमा दूंगा। सोडा-साबुन बिना जल के काम नहीं देते। लेकिन बिना सोडा-साबुन के भी शुद्ध जल से धोने का काम हो जाता है। हम भगवान की शरण में जाते हैं तो हृदय शुद्ध होता है, थकान मिट जाती है, और नई शक्ति, नई स्फूर्ति, नया संकल्प मिल जाता है।

यह एक आत्मिक क्रिया है, जिसे मनुष्य को एकांत में आत्मपरीक्षणपूर्वक करते रहना चाहिए। इस तरह की उपासना करनेवालों को एकांती भक्त कहा गया है। हम सब को एकांती भक्त बनना चाहिए। एकांती भक्त एकत्रित होकर जब भगवान का गुणगान करते हैं तब वह सामुदायिक प्रार्थना बनती है। जो एकांत उपासना नहीं करते उनके एकत्रित होने से सामुदायिक प्रार्थना नहीं बनती। एकांती उपासक जब एकत्र हो जाते हैं तब सबकी एक सामुदायिक इच्छाशक्ति बनती है जिसका हर एक को लाभ मिलता है। व्यक्तिगत या एकांत उपासना में हम ईश्वर से सीधा संबंध जोड़ने की कोशिश करते हैं और सामुदायिक प्रार्थना में संतों के द्वारा ईश्वर से सं‌ जोड़ते हैं। दोनों की मनुष्य को जरूरत है।

भगवान को समर्पण करना है, इस खयाल से हमारी सारी क्रियाएं अपने आप अच्छी होने लगेंगी। एक अतिथि घर पर आता है तो हम कितनी स्वच्छता से, दक्षता से स्वाद भोजन बनाकर उसे अर्पण करते हैं। तो जहां स्वयं भगवान को समर्पण करने का खयाल रहेगा, वहां कितनी पवित्रता हमारी क्रिया में आयगी ? भगवान के अनुसंधान से सारे भेद मिट जाते हैं, अपनापन जाता रहता है। सारे बिंदु समुद्र में मिल जाते हैं। हम सब शांति-समुद्र में डूब जाते हैं और जीवन शोभा को प्राप्त होता है। इसलिए रिवाज के तौरपर भी सामुदायिक प्रार्थना को रखकर हमें उसमें ईश्वरार्पण भावना का प्राण डालने की चेष्टा करनी चाहिए। वैसा करेंगे तो, जैसा मनु ने कहा है, हम दूसरे कोई उपाय करें या न करें हमें सिद्धि मिलेगी।

विक्रम (बिहार)
१७-४-४८

: १२ :

राष्ट्र-भाषा

अपने काम में से समय निकाल कर मैं यहां आया। क्योंकि दक्षिणवालों के साथ मेरी प्रीति हो गई है। मैं जब वेलूर जेल में था तब दक्षिण की चारों भाषाएं सीखने की

मैंने कोशिश की। मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान की एकता के लिए दक्षिणवालों को जैसे हिंदी सीखनी चाहिए, वैसे ही उत्तर-वालों को भी दक्षिण की कोई भाषा सीखने की कोशिश करनी चाहिए। वह मौका मुझे वहां मिला। मैंने देखा कि दक्षिण की चारों भाषाएं बहुत सुंदर और समर्थ हैं। हिंदी, बंगाली, या किसी दूसरी भाषा से वे पिछड़ी हुई नहीं; बल्कि कुछ बातों में उनसे अधिक शक्तिशाली हैं। उनका अपना धातु-सामर्थ्य भी अपार है। उसके अलावा संस्कृत शब्दों में 'इंचु', 'इसु' आदि प्रत्यय लगा कर असंख्य धातु वे बना लेती हैं, जिसके कारण वे समर्थ बनी हैं, और मधुर भी लगती हैं। 'तमिल्' का अर्थ ही 'अमृत' है। 'तेलुगु' का मतलब है 'शहद-जैसी मीटी भाषा'। और दरअसल वह वैसी मीठी है भी। ऐसी ही कन्नड़ और मलयालम भी हैं।

यहां मुझे मालूम हुआ कि स्त्रियां ही हिंदी सीखने में विशेष दिलचस्पी ले रही हैं। मद्रास में भी मैंने यही देखा था। और वह ठीक भी है। संस्कृति की रक्षा का काम स्त्रियां जितना कर सकती हैं उतना पुरुष नहीं कर सकते। इसलिए यह देख कर कि स्त्रियां इस बात में आगे हैं, मुझे खुशी होती है।

वेलूर जेल में दक्षिण की चारों भाषाएं बोलनेवाले डिटेन्यू (नज़रबंद) पड़े थे। लेकिन वे एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते थे, और न जानने की परवा ही करते थे। आपस का सब व्यवहार वे अंग्रेजी में चलाते थे। दक्षिण की भाषाएं एक दूसरी से इतनी नजदीक हैं कि तमिल जाननेवाला अगर

मलयालम सीखना चाहे तो आठ दिन में सीख सकता है। तमिल् और कन्नड में भी बहुत फर्क नहीं है। तेलुगु और तमिल् में कुछ फर्क है, लेकिन फिर भी तमिल्वाला एक महीने के अभ्यास से तेलुगु सीख सकता है। लेकिन् वे ऐसा कोई प्रयत्न नहीं करते थे। मैंने उस समय महसूस किया कि एक राष्ट्र-भाषा की कितनी जरूरत है।

प्राचीन काल से "आ सिंधोः आ परावतः", यानी समुद्र-तट से लेकर हिमालय की गुफा तक हमने भरत-खंड एक माना है। उस वक्त भी प्रांतों में कई जबानें चलती थीं, और एक राष्ट्र-भाषा की जरूरत पड़ी थी। वह काम संस्कृत ने किया। संस्कृत का अर्थ है, संस्कार—प्रचार की भाषा, और प्राकृत यानी प्रकृति की भाषा, जो आप लोगों में बोली जाती है। राष्ट्र-भाषा के ख्याल से ही शंकराचार्य ने अपने ग्रंथ संस्कृत में लिखे। अगर मलयालम में लिखते तो आसपास के लोगों की शायद वह अधिक सेवा कर लेते। लेकिन उनको हिंदुस्तान भर में विचार-क्रांति करनी थी, सारे हिंदुस्तान में प्रचार करना था, इसलिए उन्होंने सुबोध पद्धति से संस्कृत में ही लिखा।

आज राष्ट्र-भाषा के तौर पर संस्कृत नहीं चलेगी। यद्यपि काटजू साहब कहते हैं कि संस्कृत भाषा राष्ट्र-भाषा बनने की योग्यता रखती है। उनकी दृष्टि भी मैं समझ सकता हूं। लेकिन आज आम जनता का संस्कृत से काम नहीं चलेगा। फिर दूसरी कौन-सी भाषा राष्ट्र-भाषा हो सकती है? आखिर यही तय पाया कि हिंदुस्तानी ही राष्ट्र-भाषा हो सकती है। क्योंकि १५-२० करोड़ लोग उस भाषा को

जानते हैं। बंगाली लोग, अगर पूछें कि बंगला क्यों राष्ट्र-भाषा न हो? क्या उसमें साहित्य की कमी है? मैं कहूंगा बंगला में तो हिंदुस्तानी से बढ़ कर साहित्य है। फिर भी वह राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। उसका एक ही कारण है कि वह भाषा अधिक लोग नहीं जानते। हिंदुस्तानी को गांधी जी ने राष्ट्र-भाषा बनाया हो ऐसी बात नहीं है। जो फकीर और साधु हिंदुस्तानभर में घूमते थे वे हिंदुस्तानी ही बोलते थे। इस तरह वह सहज ही राष्ट्र-भाषा हो चुकी है। उसी को हमने मान्यता दी है।

लेकिन अब हिंदी और हिंदुस्तानी के नाम पर झगड़े पैदा हो गए हैं। मेरी निगाह में ये झगड़े निकम्मे हैं। जो बात हमने एकता के लिए निकाली उसमें भी अगर हम झगड़ा खड़ा कर देते हैं तो एकता की जड़ को ही काटते हैं। जो हिंदी का नाम लेते हैं, वे भी मेरा ही काम करते हैं, बशर्ते कि वे हिंदी को आसान बना दें। यही बात उर्दू के लिए भी कहूंगा। आप देखेंगे कि आसान हिंदी और आसान उर्दू में बहुत फर्क नहीं है, और वही हिंदुस्तानी है। आखिर शब्दों के बारे में इतना झगड़ा क्यों होना चाहिए? मैं अगर पंजाब में जाकर बोलने लगूं तो उर्दू शब्दों का अधिक उपयोग करूंगा, और अगर दक्षिण की तरफ जाऊं तो संस्कृत शब्दों का अधिक उपयोग करूंगा। वहां अगर मैं 'काफी' शब्द का उपयोग करूं तो शायद वे 'चाय-काफी' समझ बैठेंगे। अगर 'बस' शब्द को उपयोग करूं तो 'मोटर-बस' समझेंगे। इसलिए मैं वहां 'पर्याप्त' से काम लूंगा। जब तक भाषा का व्याकरण

एक है, वाक्य-रचना एक है, क्रियापद वे ही हैं, तब वह एक ही भाषा कही जाती है; शैली में भले ही फर्क हो।

इसलिए मैं कहता हूं ये झगड़े छोड़ दो। दक्षिणवालों के लिए मैं लिपि का भी आग्रह नहीं रखूंगा। उनको मैं कहूंगा, तुम तो अपनी लिपि में ही हिंदी सीखो। भाषा आ जाने के बाद लिपियां जितनी सीखनी हैं, सीख लो। उसमें कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

इस तरह मेरा न हिंदीवालों से झगड़ा है, न उर्दूवालों से। मैं तो दोनों को अपना सहकारी मानता हूं। मैं उनको कहूंगा कि मेरे पास संस्कृत, अरबी, फारसी आदि सौ शब्द हैं, आपके पास पचास हैं। मेरे सौ में आपके पचास तो आ ही जाते हैं। समुद्र नदियों से क्यों झगड़ा करेगा? समुद्र में जिस तरह सारी नदियों का समावेश हो जाता है, वैसे मेरे शब्द-भंडार में सभी शब्दों का समावेश हो जाता है। किस शब्द का कहां उपयोग करना यह अकल में रखता हूं।

आप बहनें उस झगड़े से अलग रहिए। गांधी जी ने कहा था कि अहिंसा का प्रचार स्त्रियां विशेष कर सकती हैं। पुरुषों ने बहुत सारे फसाद दुनिया में खड़े किए हैं, उनको मिटाना आपका काम है। इस क्षेत्र में भी आप आगे आएंगी तो हिंदुस्तान में संस्कृति का प्रचार आपके द्वारा अच्छी तरह से होगा।

नई दिल्ली
२०-४-४८

: १३ :

१

जैनों का मुख्य विचार

आज हम महावीर स्वामी का दिन मना रहे हैं। ढाई हज़ार साल पहले उन्होंने इस भूमि पर अवतार लिया था। उन्होंने जो विचार दिया वह नया नहीं था। महावीर स्वामी तो जैनों के आखिर के, यानी २४वें, तीर्थंकर माने जाते हैं। उनके हजारों साल पहले जैन-विचार का जन्म हुआ है। ऋग्वेद में भगवान की प्रार्थना में एक जगह कहा है "अर्हन् इदं दयसे विश्वं अभवम्"—हे अर्हन्! तुम इस तुच्छ दुनिया पर दया करते हो। इसमें 'अर्हन्' और 'दया' दोनों जैनों के प्यारे शब्द हैं। मेरी तो मान्यता है कि जितना हिंदू-धर्म प्राचीन है, शायद उतना ही जैन-धर्म भी प्राचीन है। लेकिन किसी धर्म का प्राचीन होना ही बड़ी बात नहीं है। अगर कोई धर्म अर्वाचीन भी है, लेकिन उसमें सही बात है, तो उसकी कीमत है। और कोई धर्म अति प्राचीन है, लेकिन सही बात उसमें नहीं है, तो उसकी कोई कीमत नहीं है। दरअसल कीमत सही विचार की है, और सही विचार जैनों ने बहुत दिया है।

जैनों का मुख्य विचार, प्राणियों पर दया-भाव रखना मशहूर है। उनका एक दूसरा भी विचार है जो पहले के

जितना प्रसिद्ध तो नही है, लेकिन उतने ही महत्त्व का है। वह है हर बात में मध्यस्थ-वृत्ति रखना, यानी किसी बात का आग्रह न रखना। आग्रह से हम एकांगी बन जाते हैं। जैन-धर्म सर्वांगी दृष्टि रखने को कहता है। उसे वे सम्यक्त्व कहते हैं। यह जैन-विचार की विशेषता है। हिंदू-धर्म में जन्म लेकर, आग्रह रक्खे बिना अपने विचार का प्रचार करने का ही यह नतीजा है कि आज जैनी लोग तादाद में कम हैं। लोग पूछते हैं, "जैनों की तादाद इतनी कम क्यों है?" मैं कहता हूं कि अगर उनकी तादाद ज्यादा होती तो मैं उनको अपने काम में नाकामयाब गिनता। उनकी तादाद कम है इसीमें उनकी कामयाबी है। जैनों को हिंदू-धर्म से अलग कोई दूसरा धर्म स्थापन नहीं करना था। उन्हें तो हिदू-धर्म में ही सुधार करना था। हिंदू-धर्म में शुद्धि करके उनको मिट जाना था। अगर हिंदुस्तान के तीस करोड़ लोगों में दया का भाव और मध्यस्थ-दृष्टि आ गई तो जैनों ने जीत लिया। 'जैन' शब्द का अर्थ ही 'जीतना' है। जो अपने को जीतता है, जिसने आत्मजय प्राप्त की है, वही सच्चा जीतने-वाला है। वीर पुरुष वह कहलाता है जो दुनिया को जीतता है। लेकिन महावीर वह है जिसने अपने ऊपर जय पाई, और दुनिया के हृदय में ऐसे छिप गया, जैसे दूध में शकर।

भारत के मध्ययुगीन इतिहास में हम देखते हैं कि शिक्षा देनेवाले गुरु जैन थे, और शिक्षा पानेवाले उनके विद्यार्थी हिंदू थे। बचपन में हमारी पढ़ाई शुरू हुई तब की मुझे याद है कि 'अ', 'आ'; 'क', 'ख' आदि वर्ण पढ़ाने के पहले विद्या-

थियों को "श्रीगणेशाय नमः, ओं नमः सिद्धम्" यह सिखाते थे। मैं महाराष्ट्र की बात करता हूं। यहां कैसे सिखाया जाता है, मुझे मालूम नहीं। उसमें "श्रीगणेशाय नमः" शिष्यों के धर्म को लक्ष्य करके रक्खा है, क्योंकि हिंदू-धर्म में पहला नमन गणेश जी को किया जाता है। "ओं नमः सिद्धं" यह जैन-धर्म को लक्ष्य करके रक्खा है। वह जैन गुरुओं का सिक्का है। लेकिन जैन गुरु इतने नम्र थे कि "ओं नमः सिद्धं" को उन्होंने 'श्रीगणेशाय' के बाद रक्खा। जैनों ने अपने लिए स्वतंत्र अधिकार भी नहीं मांगे। वे अपने को सिर्फ सुधारक मानते थे, यही उनकी विशेषता थी। उन्होंने सुधार का बहुत कार्य किया। अब उसे ही आगे चलना चाहिए। उसके लिए अब उन्हें (जैनों को) गुरु बनने की जरूरत नहीं है। उन्हें तो सेवक बनना चाहिए। वे सेवक बनेंगे तो उनके विचारों का सहज प्रचार होगा।

जैनों ने भी अहिंसा का नाम लिया और गांधी जी ने भी। लेकिन हमने देखा कि गांधी जी की अहिंसा से जो शक्ति पैदा हुई वह जैनों की सांप्रदायिक अहिंसा से नहीं हुई, क्योंकि उन्होंने उसका अर्थ संकुचित कर लिया। अहिंसा का यहां-तक संकुचित अर्थ किया गया कि अहिंसा के खयाल से खेती करना भी गौण मान लिया गया। क्योंकि खेती में कीड़ों की हिंसा होती है। अहिंसक को व्यापार की मनाही नहीं है। खेती में पैदा हुए माल का व्यापार होता है। आचार्यों ने "कृत, कारित और अनुमोदित" तीन प्रकार की हिंसा बताई है। कृषि में अगर हिंसा है तो कृषि में पैदा हुए अनाज

का व्यापार करना उस हिंसा का अनुमोदन ही हुआ। कई जैन ऐसे हैं, जो चींटियों को शकर खिलाते हैं। हमारे वर्धा में एक दयालु पुरुष हैं; मैंने देखा है, कि वह गांव से बाहर दूर तक घूमने को जाते हैं और इधर,उधर शकर डालते हैं। एक दिन वह शकर डाल कर गए; काफी चींटियां जमा हो गईं, थोड़ी ही देर बाद मैंने देखा, एक बैल आया, जिसका पांव पड़ने से सैकड़ों चींटियां खतम हो गईं। अगर वह भला आदमी शकर न डालता तो यह सब हिंसा न होती। जीव-जंतुओं को पालना हम अहिंसा समझते हैं, लेकिन वह गलत विचार है। जिसने पालन करने की जिम्मेदारी उठाई, उसको संहार करने और जन्म देने की भी जिम्मेवारी उठानी चाहिए। मनुष्य इतनी भारी जिम्मेवारी नहीं उठा सकता। वह तो ईश्वर का ही काम है। इस तरह की दया करने जाते हैं तो हिंसा ही अधिक होती है।

इसलिए गांधीजी ने सिखाया कि अहिंसा की शक्ति हम मानव-मानव के बीच का वैरभाव मिटाने में लगा दें। मत्सर, क्रोध आदि को चित्त में से निकालकर चित्त-वृत्ति शुद्ध करें। मनुष्य मनुष्य के साथ ही मत्सर करता है, बैल के साथ तो कोई मत्सर नहीं करता। मानवों के व्यवहार में ही हमारी अहिंसा की कसौटी होती है।

अहिंसा के साथ सत्य जुड़ा हुआ रहता है। अहिंसा के समान ही सत्य की महिमा जैन आगमों ने गाई है। लेकिन कितने ही जैन ऐसे हैं, जो व्यापार में बेखटके असत्य का उप-योग करते हैं और मानते हैं कि हम खेती नहीं करते, व्यापार

करते हैं, इसलिए हिंसा से बचे हुए हैं। हिंसा से बचने का यह तरीका नहीं है। अगर सत्य नहीं रहा तो अहिंसा की भी रक्षा नहीं हो सकती।

इसलिए मैं आपसे अर्ज करूंगा कि महावीर जयंती के इस शुभ अवसर पर सत्य का व्रत लीजिए, और दुःखी मानवों की सेवा का निश्चय कीजिए। अपने चारों ओर नजर डालिए। कितने ही आपके भाई दुःख में पड़े हुए हैं, जैसे आजकल ये शरणार्थी हैं। सरकार उनके दुःख दूर करने की कोशिश कर रही है; उससे हमारा धर्म पूरा नहीं हो जाता। हमें अपने दिल में भी दयाभाव रखना चाहिए, और उनके लिए कुछ-न-कुछ करना चाहिए। अगर जैन लोग ऐसा करेंगे तो अपने धर्म की वे बहुत सेवा करेंगे।

गांधी-आश्रम खादी भंडार, दिल्ली
२१-४-४८

२

मांस-भक्षण

मैंने समझा था कि अभी मैंने जितना कहा काफी है। लेकिन मांस-भक्षण के विषय में भी मैं कहूं ऐसी इच्छा कुछ भाइयों ने प्रगट की है।

बात ऐसी है कि जैन लोग जब दया-भाव की बात सोचते हैं तो प्रथम मांसाशन से छूटने का विचार ही उनके सामने

आता है। मांसाशन का त्याग करना चाहिए, इस बारे में विवेकी पुरुषों में दो मत हो ही नहीं सकते। लेकिन उसका सार्वत्रिक अमल कैसे होगा यह सोचने की बात है।

प्राचीन काल में सारी प्रजा मांसाहार करती थी और ऋषि-मुनि भी मांसाहार करते थे। विचार करने पर ऋषियों को सूझा कि पशु-हत्या करके हम जीएं यह मानवता के लिए शोभा देनेवाली बात नहीं है। इसलिए उससे छूटने के लिए वे शोध करने लगे। तब खेती की शोध हुई और खेती से अनाज पैदा करके मनुष्य मांसाशन कम कर सकता है, यह बात उनके ध्यान में आई। तबसे इस क्षेत्र में अहिंसा का आरंभ हुआ। साथ ही गाय के दूध का उपयोग सूझा, जिससे मांसाशन से मुक्त होने की युक्ति हाथ में आ गई। वेद में गाय के विषय में आया है, "गोभिः तरेम अमतिं दुरेवाम्"। हमें गो-सेवा मिली तब मांसाशन-रूप दुर्बुद्धि से मुक्त होने का रास्ता दिखाई दिया। क्योंकि गाय से बैल मिल जाते हैं, जिनसे हम खेती का काम लेते हैं; और दूध मिलता है, तो मांसाहार से छूट जाते हैं। सामुदायिक मांसाहार-निवृत्ति का सबसे पहला श्रेय शायद जैनों को ही है। बाद में वैष्णव, ब्राह्मण आदि ने उसको स्वीकार किया। आज तीन करोड़ के लगभग लोग ऐसे होंगे, जो मांसाशन बिलकुल नहीं करते। और दूसरे जो मांसाहार करते हैं, वे भी उसको अच्छा समझ कर नहीं करते हैं। यह जैनों के विचार की विजय है।

अगर सारी प्रजा मांस-निवृत्त हो, ऐसा हम चाहते हैं, तो केवल मांस-त्याग का विचार उसके सामने रखने से यह

बात होनेवाली नहीं है । उसके लिए देश में दूध, फल, तरकारी, काफी तादाद में पैदा करनी होगी । गरीबों को ये चीजें पूरी मात्रा में मिल सकेंगी तभी मांसाहार छूटेगा । पवनार के आश्रम के सामने ही नदी है । वहां रोज मच्छीमार आते हैं । दिनभर मेहनत करके कुछ मछलियां जमा करते हैं, और उन्हें बेचकर जैसे-तैसे अपना गुजारा करते हैं । मेरी नजर के सामने ही यह चलता है, लेकिन मैं उनको रोकता नहीं । क्योंकि मैं जानता हूं कि मांस के बदले गरीबों को हम कोई दूसरी चीज देंगे तभी उनको मांसाहार से छुड़ा सकते हैं । आज तो अनाज का भी अकाल है । मछलियों आदि का उपयोग करके लोग अकाल से किसी तरह अपना बचाव कर लेते हैं । इससे हम छूटना चाहते हैं तो जैसे कि उपनिषदों ने आज्ञा दी है, अन्न अधिक मात्रा में पैदा करने का व्रत लेना होगा । "अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतं" । बंगाल में गरीबों को चावल के सिवा और कोई चीज नहीं मिलती । उसके साथ मछली खाकर वे कुछ पोषण पा लेते हैं । उनको अगर हम मछली छोड़ने के लिए कहेंगे तो उसके बदले में कौन-सी चीज दे सकेंगे ?

हम में से जो लोग आज मांसाहार नहीं करते उनको अहंकार करने का कोई कारण नहीं है । मांसाशन तो हमारे पूर्वजों ने छोड़ दिया था । उनको, उसके छोड़ने में त्याग करना पड़ा था, तपस्या करनी पड़ी थी । हमको तो वह चीज विरासत में मिली है । हम मांस खा ही नहीं सकते, हमें उससे घृणा होती है । इसलिए हम मांसाहार नहीं करते,

इसका श्रेय हमारे पूर्वजों को है। हम मांस नहीं खाते लेकिन उसके बदले में ऐसी चीजें खाते हैं, जो गरीबों को नहीं मिल सकतीं। और बीमार पड़ने पर डाक्टर जब इंजेक्शन देता है, तब उसमें वह क्या चीज दे रहा है इसके बारे में हम सोचते ही नहीं हैं। मांस मुंह से खाएंगे तो उसका कुछ हिस्सा हजम होगा और कुछ बाहर जायगा। लेकिन इंजेक्शन के जरिए मांस-जन्य वस्तु खाते हैं तो वह चीज पूरी-की-पूरी खून में चली जाती है। मांस खाने का वह एक विशेष रूप है। उसको कबूल करते हैं और सिर्फ मुंह से मांस नहीं खाते, तो कोई बड़ी बात नहीं है। इसलिए मैं तो कहूंगा कि सब समुदाय से मांस छुड़ाने की बड़ी बात करने के पहले हम मानव-मानव में जो झगड़े हैं, स्वार्थ-बुद्धि है, झूठ है, उससे मुक्त होने की कोशिश करें। साथ-साथ दूध, फल, तरकारी आदि परिपूर्ण मात्रा में पैदा करें। इसके बाद समाज को मांसाशन से मुक्त करने की कोशिश की जा सकती है।

और एक बात। ऊंच-नीच के भाव को हम अपने दिल से निकाल दें। जो मांस खाता है वह नीच है, और जो नहीं खाता वह ऊंच है, ऐसी भावना रखने में हम अवनति की ओर जाते हैं। मैं तो उस मनुष्य को अधिक पसंद करूंगा जो आदत से, या लाचारी से, गोश्त खाता है, लेकिन नम्र रहता है, दया-भाव रखने की कोशिश करता है; और मांसाशन से मुक्त नहीं है इसलिए अपनेको दोषी मानता है; बनिस्बत उसके, कि जो मांस तो नहीं खाता लेकिन असत्य बोलता है, ऐश-आराम में रहता है, खुद को ऊंचा समझता है, दूसरे के हाथ

का अन्न, या पानी लेना हीन समझता है। इसमें अहंकार है। जहां अहंकार है वहां आध्यात्मिक विकास की बात ही कहां रहती है ?

अभी, मेरे पास, और भी एक चिट्ठी आई है; जिसमें पूछा है कि कंद, मूल, बीज आदि खाना चाहिए या नहीं। फल का बीज खाने से फल निर्वंश होता है इसलिए फल का रस खाना चाहिए, बीज को बचाना चाहिए आदि सूक्ष्म बातों की चर्चा शास्त्रों में होती है। शास्त्रों का काम ही हर बात का बारीक-से-बारीक विश्लेषण करना है। लेकिन हमको अपनी हैसियत जाननी चाहिए। इन बातों को, एक दृष्टि से मैं बहुत गौण मानता हूं। जीवन की मुख्य बातों को छोड़ कर हम यदि इन्हींमें फंसते हैं तो जीवन की असलियत को खो बैठते हैं। दूसरी दृष्टि से ये बातें बहुत आगे की हैं। कालेज में पढ़ने के योग्य हैं। अभी तो हम प्रायमरी क्लास में भी दाखिल नहीं हुए हैं। क्या खाना चाहिए इसके बजाय कितना खाना चाहिए यह वस्तु आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक महत्त्व की है। एक आदमी मामूली दाल-रोटी खाता है—जो कि शायद राजस अन्न समझा जायगा—लेकिन ठीक मात्रा में खाता है, जिह्वा पर काबू रखता है, स्वाद की वृत्ति नहीं रखता, तो आध्यात्मिक दृष्टि से उसकी योग्यता अधिक है; बनिस्बत उसके, जो कि सात्त्विक आहार करता है, लेकिन परिमाण में अधिक खा लेता है, और स्वाद चखने की वृत्ति रखता है।

मैं जानता हूं कि जैनों में क्या खाना, क्या न खाना इसीका

विचार अधिक चलता है। लेकिन मेरे विचार में अस्वाद-वृत्ति और परिमित आहार का ही अधिक महत्त्व है।

दिल्ली
२१-४-४८

: १४ :

हमारा कर्तव्य

आज मैंने सोचा है कि आपका ध्यान शरणार्थियों के सवाल की तरफ खीचूं। क्योंकि मैं देख रहा हूं कि उनकी हालत बहुत बुरी है। शरीर के एक अवयव में अगर जख्म हो जाता है, तो बाकी सारे अवयवों के खुशहाल होते हुए भी हमारा ध्यान उसी जख्मी अवयव की तरफ जाता है। अच्छा समाज एक शरीर-जैसा होना चाहिए। समाज में जो दुखी हिस्सा होता है, उसकी ओर सबका ध्यान जाना चाहिए। लेकिन यहां ऐसा नहीं हो रहा है। मैंने जो देखा और सुना है वह एक अत्यंत दयनीय कहानी है। लोग टेंटों-तंबुओं में पड़े हैं। वहां पेड़ों का तो नाम भी नहीं है। गरमी के दिनों में उनमें रहना मुश्किल है। कुछ टेंट तो ऐसे हैं कि उनमें खड़े होकर प्रवेश भी नहीं कर सकते। लोगों को ठीक से काम नहीं मिल रहा है। सब तरह से उनकी बुरी हालत है। सरकार अपनी ओर से कुछ कर रही है, लेकिन वह बिलकुल ना-काफी है। हम सबको उसमें ध्यान देना चाहिए।

हर एक व्यक्ति उनके लिए जो कुछ कर सकता है, करे। कैंप में जाकर जो मदद दे सकते हैं, देनी चाहिए। कोई धंधा दिलवाने में सहायता दे सकते हैं, तो वह देनी चाहिए। किसीके घर में जगह हो तो उनको वहां रख लेना चाहिए। किसी अनाथ लड़के को अपना लड़का समझकर उसका पालन-पोषण करना चाहिए। जिससे जो बन सकता है, करना चाहिए।

किसी कुएं में हम बालटी डाल कर पानी लेते हैं तो बालटी की जगह पर पानी में गड्ढा नहीं पड़ता। आसपास का पानी फौरन दौड़ कर पड़नेवाले गड्ढे को भर देता है। पानी कम होने से सारी सतह नीचे चली जाती है, लेकिन पानी में गड्ढा नहीं पड़ता। इससे उलटा जुवार के ढेर में होता है। ढेर में से एक सेर जुवार हमने निकाल ली तो उस जगह पर उतना गड्ढा पड़ जाता है। आसपास के थोड़े दाने—जो महात्मा होते हैं—उस गड्ढे की पूर्ति करने के लिए दौड़ जाते हैं, लेकिन बाकी सारे वैसे के वैसे बैठे रहते हैं। समाज की हालत कुएं के पानी-जैसी होनी चाहिए। सब तरफ से दौड़ कर मदद के लिए जाना चाहिए। लोग इस तरह करेंगे तो हमारी सरकार को सहूलियत होगी, और कुछ राहत मिलेगी। उसे राहत की सख्त जरूरत है। काम बहुत बड़ा है। अकेली सरकार से वह पार पड़ता नहीं दीखता है। सब का जोर लगेगा तभी वह पूरा होगा।

हमारे काम का दूसरा नतीजा यह होगा कि उससे लोकमत बनेगा। लोकशाही सरकार को लोकमत गति देनेवाली

चीज होती है। वही लोकशाही सरकार की खसूसियत—शक्ति—है। इसी में उसकी ताकत है, और इसी में कमजोरी। अगर लोकमत सुस्त होता है, तो लोकशाही सरकार सुस्त बन जाती है। वह जागृत होता है, तो उसको चाहना मिलती है। इसलिए हर एक को अपनी-अपनी शक्ति इस काम में लगा देनी चाहिए और लोकमत जागृत करना चाहिए। नहीं तो सारे हिंदुस्तान में जहर फैलेगा, जिसको काबू में लाना दुश्वार हो जायगा। इसलिए समय पर ही चेत जाना अच्छा है।

शरणार्थियों के बारे में जैसे कोशिश करनी है वैसे उन मुसलमान भाइयों के बारे में भी करनी है, जो हैं तो हिंदुस्तान में ही, लेकिन फसाद के समय डर कर अपने स्थानों को छोड़ कर भाग गए थे। यहां से जो पाकिस्तान चले गए हैं उनकी बात अभी मैं नहीं कर रहा हूं। जो यहीं कहीं आश्रय लेकर रह रहे हैं, उनको फिर से अपने घरों में बसाने की बात कर रहा हूं। यह काम तो फौरन होना चाहिए। अपने स्थान पर वापस लौटने में उन्हें डर मालूम होता हो तो वह हमारे लिए शोभा नहीं देता, न उसमें हमारी बहादुरी ही है। बहादुर तो वह है जो न किसी से डरता है, न जिससे किसी के दिल में डर पैदा होता है। मुसलमान भाइयों को हमारे पास आने में अगर डर लगता हो, तो हम ही खुद निडर नहीं बने ऐसा उसका अर्थ होता है। बहादुर मौके पर लड़ता है, तो कर्तव्य-बुद्धि से लड़ता है, द्वेष-बुद्धि से नहीं लड़ता। द्वेष-बुद्धि से ताकत बढ़ती नहीं, बल्कि घटती है। उससे हम तो

कमजोर बनते ही हैं, मगर आसपास का वातावरण भी हम कमजोर बनाते हैं। इसीलिए ज्ञानियों ने कहा है कि 'बहादुर अपने दोनों हाथों में अद्वेष लेकर जायगा'---अद्वेषो हस्तयोर्दधे। हमें द्वेष-बुद्धि छोड़कर निडर बनना है, और दूसरों को निडर बनाना है।

कुछ लोग ऐसी बातों में पाकिस्तान की तरफ देखा करते हैं। मैं कहता हूं, यह दुर्बुद्धि है, और यदि सोचेंगे तो मालूम होगा कि वह मूर्खता भी है। दूसरे को देख कर चलते हैं तो हम अपनी चोटी उसके हाथ में दे देते हैं। फिर इस तरह हम बंदर बन जाते हैं और वह हो जाता है हमें नचानेवाला। वह जैसे नचायेगा वैसे हम नाचेंगे। इससे हम अपने इनीशिएटिव्ह---अभिक्रम को खोते हैं, और पूरे गुलाम बन जाते हैं। अगर हमें वैसे गुलाम नहीं बनना है, तो हमें खुद ही जिसे हम ठीक समझते हैं वह करना चाहिए। हम अगर ठीक रास्ते से चलते हैं, यहां की अल्प संख्या को रक्षण देते हैं, तो सामनेवाले को भी उसी तरह करना पड़ेगा। अगर वह वैसा नहीं करेगा तो खुद ही खतरे में पड़ेगा। गीता ने हमें यही सिखाया है न? 'कर्तव्य-कर्म करो, फल की चिंता छोड़ो'। हमारा कर्म ठीक है या नहीं हम इसी की चिंता रखें, फल की चिंता वह कर्म ही रखेगा। काम ठीक होगा तो नतीजा ठीक ही निकलनेवाला है, ऐसा निश्चय हमें हो जाना चाहिए।

इस तरह काम करेंगे तो हम सही रास्ते पर रहेंगे। नहीं तो गुमराह हो जायंगे। हम गुमराह हो जाते हैं तो दूसरा भी गुमराह होता है; और एक ऐसा दुष्ट-चक्र चलता है, जो

किसी के भी हाथ में नहीं रहता। फिर दोनों तीसरे के ताबे हो जाते हैं। इसलिए हमने जो आजादी हासिल की है उसको अगर टिकाना है तो हमें अपने दिमाग ठिकाने पर रखने चाहिए, स्वस्थ-चित्त बनना चाहिए, भाई भाई की तरह रहना चाहिए। शंकाशील नहीं बनना चाहिए। शंका से शंका बढ़ती है, और विश्वास से विश्वास बढ़ता है यह अनुभव का शास्त्र है।

राजघाट दिल्ली,
शुक्रवार २३-४-४८

: १५ :

मुसलमानों में विश्वास पैदा करो

इस गांव में मैं खास उद्देश्य से आया हूं। क्योंकि मैंने सुना था कि बूड़िया की हालत बिलकुल अलग है। पूर्वी पंजाब के बहुत सारे मुसलमान पाकिस्तान चले गए हैं। उधर गुड़गांव की तरफ कुछ मुसलमान बाकी हैं, और इधर बूड़िया में कुछ हैं। वे थोड़ी तादाद में हैं। लेकिन उनको पाकिस्तान भेजने का इंतजाम किये जाने पर भी उन्होंने जाना पसंद नहीं किया और वे यहीं ठहर गए। यहां उनकी रक्षा के लिए कुछ मिलिटरी भी रखी हुई है। यह सारा हाल जब मैंने सुना तो सोचा कि इस गांव में आकर मुसलमान भाइयों से, तथा यहां आये हुए शरणार्थियों से मिलूं, और दोनों में मुहब्बत बढ़ाने की कोशिश करूं।

यहां आकर सब भाइयों से मिला, और उनकी बातें सुनीं। यहां जो शरणार्थी पश्चिमी पंजाब से आए हैं वे काफी दुःख में हैं। उनको घर तो मिल गए हैं, लेकिन पश्चिमी पंजाब में वे जिस तरह रहते थे वैसी व्यवस्था तो यहां नहीं हुई है। जो मुसलमान भाई यहां रह गए हैं वे भी दुःख में हैं। दो दुःखी मिल जायं तो दोनों में एक दूसरे के प्रति हमदर्दी होनी चाहिए। कुंती का किस्सा मशहूर है। जब भगवान उन पर प्रसन्न हुए, और उनसे वर मांगने को कहा, तो उन्होंने मांगा—"विपदः संतु नः शश्वत्"—यानी मुझे हमेशा दुःख ही रहे। यह सुन कर भगवान बोले, "यह कैसा वर मांगती है ?" कुंती ने कहा "दुःख रहता है तो दुःखियों के प्रति हमदर्दी रहती है, और भगवान का निरंतर स्मरण रहता है। सुख में मनुष्य का हृदय निठुर बन जाता है, वे भगवान को भूल जाते हैं।" लेकिन यहां मैं देखता हूं कि दोनों के दुःखी होते हुए भी हमदर्दी पैदा नहीं हो रही है। मुसलमानों के दिलों में खौफ है। मिलिटरी उठ जायगी तो क्या होगा ? यहां जो दूसरे भाई रहते हैं उनके लिए यह शरम की बात है। हम जंगली जानवर थोड़े ही हैं कि हमसे दूसरों को डर लगे ? हमें तो उन्हें विश्वास दिलाना चाहिए कि अगर उनपर कुछ आफत आएगी तो हम बीच में पड़ेंगे। पहले हमारी जान जायगी, फिर उनकी। हम ऐसा करेंगे तो उनमें विश्वास पैदा होगा।

वैसे ही मुसलमानों को भी मैं कहूंगा कि उन्हें डर छोड़ देना चाहिए। कुरान में यह बात बार-बार आई है कि भग-

वान पर जिसका भरोसा है वह दुनिया में किसी से नहीं डरता। जब तक भगवान चाहता है तब तक मनुष्य इस दुनिया में रहता है, और जब वह उसको उठा लेना चाहता है तब वह उठ जाता है। ईश्वर की इच्छा के बगैर पेड़ की एक पत्ती भी नहीं हिलती। फिर डर काहे का ?

मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप लोग यहां भाई-भाई जैसे रहें। हिंदुस्तान में कुछ मुसलमान रहना पसंद करते हैं तो यह हमारे लिए अभिमान की बात है। इसी में हमारे धर्म की भी प्रतिष्ठा है। सब धर्मों ने यही कहा है कि आपस में प्रेम से रहो। इन चंद भाइयों का जिम्मा अगर हम नहीं उठाते हैं तो हिंदुस्तान के लिए हमें जो करना चाहिए वह हम नहीं करते हैं, और अपनी सरकार की ताकत कम करते हैं। यह सरकार हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ख्रिस्ती आदि सब धर्मों के लोगों की है, बशर्ते कि सब प्रेम से रहें। सरकार का कर्तव्य सब की पूरी रक्षा करने का है। मुसलमान अपने घर छोड़ कर चले गए हैं, वे अगर अपने घरों में वापस आ जायंगे तो फिर हमारा क्या होगा, यह चिंता शरणार्थियों को नहीं करनी चाहिए। सरकार सब की चिंता करने के लिए समर्थ है। दोनों के हितों में संघर्ष न आवे ऐसी व्यवस्था सरकार कर सकती है, और करेगी, मेरा ऐसा विश्वास है।

आपके इस छोटे गांव में आकर मुझे समाधान हुआ है। जहां-जहां डर है वहां जाकर मैं हिम्मत देना चाहता हूं। पर हिम्मत तो अंदर से आनी चाहिए। लेकिन बाहर का निमित्त भी कभी-कभी मददगार हो जाता है। इसमें किसी पर मैं एहसान

नहीं करता, बल्कि अपना कर्तव्य करता हूं। यहां के लोगों का—मुसलमानों का भी—रतनअमोलसिंह पर विश्वास देख कर मुझे आनंद हुआ। एक सिक्ख भाई मुसलमानों का विश्वास संपादन कर सके यह अच्छा उदाहरण है। ऐसे दूसरे भी उदाहरण हैं। कई जगह हिंदुओं ने मुसलमानों की रक्षा की है, और मुसलमानों ने हिंदुओं की। हिंदुस्तान में ऐसे बनाव बने यही उसकी उन्नति का आश्वासन है।

बूरिया (अम्बाला)
पूर्वी पंजाब
२४-४-४८

: १६ :

कांग्रेसजनों का कर्तव्य

आज गांधीजी के महाप्रयाण का दिन है। उनकी मृत्यु को आज तीन महीने पूरे होते हैं। महापुरुषों का जीवन और मरण दोनों एक ही मतलब रखते हैं। जब वे शरीर में रहते हैं तब भी शरीर से परे होते हैं। उनका जीवन विचारमय होता है। जब शरीर छूट जाता है, तब उपाधि छूट जाने के कारण विचारं का जोर बढ़ता है, और सबको धक्का देने लगता है। मुझे तो इसका निरंतर अनुभव आता है। उस स्मरण से आत्मपरीक्षण के लिए स्फूर्ति मिलती है, और नित्य निरीक्षण होता रहता है। उस स्फूर्ति को लेकर हमें तो हमारे सामने

जो सेवा पड़ी है उसे करते रहना चाहिए, और उसमें कहांतक प्रगति हुई है यह बार-बार देखना चाहिए।

पिछली बार मैंने शरणार्थियों के प्रश्न की ओर आपका ध्यान खींचा था। आज भी उसी विषय पर बोलना चाहता हूं। चार हफ्ते पहले मैं कैम्पों को देखने गया था। उस समय पानीपत में बिलकुल ही छोटे टेंट (तंबू) देखे थे, जिनका जिक्र मैंने पिछले भाषण में किया था। ऐसे छोटे टेंट कई जगह हैं। उन्हें फौरन हटा देना उसी समय तय हो गया था, लेकिन तीन-चार हफ्ते बीतने पर भी उन्हें नहीं हटाया जा सका है। दिन-ब-दिन सूर्यनारायण तपते जा रहे हैं। उन टेंटों के अन्दर बच्चों की क्या हालत होती होगी यह सोचता हूं तो मुझे चूल्हे पर उबालने के लिए रखे हुए आलू की मिसाल याद आती है। उनके दुःख का अधिक वर्णन करके मैं वाणी को श्रम नहीं देना चाहता हूं। आपके भी बाल-बच्चे हैं, आप थोड़े में समझ सकते हैं। यह काम जल्दी नहीं हो रहा है। इसके लिए मैं किसीको दोष नहीं देना चाहता; क्योंकि जिस किसीको मैं दोष दूंगा वह मेरा ही रूप होगा। इसलिए अगर मैं दोष देखना चाहूं तो निज का ही देखना चाहूंगा।

अभी मैं कांग्रेस के कार्यकर्ताओं का विशेष ध्यान इस ओर खींचना चाहता हूं। गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रक्खा, और बार-बार उस पर जोर दिया। शरणार्थियों की सेवा सारे रचनात्मक कामों में शिरोमणि है। रचनात्मक कामों के जितने पहलू हैं इसमें उन सबका उपयोग होता है, सब

इसमें आ जाते हैं। इस काम के लिए कांग्रेस की एक शरणार्थी-सेवा-समिति है। लेकिन उसपर सब कुछ नहीं छोड़ना चाहिए। यह सबका काम है। हर एक कार्यकर्ता को इसमें भाग लेना चाहिए। घर-घर जाकर लोगों को समझाना चाहिए। क्या कोई अपने घर में किसी शरणार्थी को रख सकता है? यह देखना चाहिए।

लेकिन अबतक कांग्रेसवालों को रचनात्मक कामों में दिलचस्पी कम रही है। अबतक जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब वैसे नहीं होना चाहिए। अबतक के लिए क्षमा भी हो सकती है। क्योंकि उस समय देश के सामने मुख्य सवाल था अंग्रेजों को यहांसे निकालने का। जो रचनात्मक काम करते थे, उनकी भी नजर उसी सवाल पर लगी रहती थी। अंग्रेजों को निकालने में रचनात्मक कामों की कैसी मदद हो सकती है, यही लोगों को समझाना पड़ता था। "उससे जनता में पहुंचने का हमें मौका मिलता है, जनता जागृत होकर संगठित होती है और फिर देश में शक्ति पैदा होती है, जिससे राजनीतिक कार्य में काफी मदद मिलती है", इस तरह समझाकर रचनात्मक कामों को बढ़ाने की हम कोशिश करते रहे। इस तरह कुछ काम तो चला, लेकिन कांग्रेसवालों को उसमें दिलचस्पी नहीं रही।

अब तो अंग्रेज गए। अब रचनात्मक कार्यक्रम का ही अवसर आया है, क्योंकि राष्ट्र-निर्माण करना है। हर एक काम के दो पहलू होते हैं। एक होता है, असद्-वृत्ति का विनाश; और दूसरा होता है, सद्वृत्ति का विकास। दोनों की जरूरत

होती है। अगर केवल विनाश के पहलू पर ही ध्यान रहा, और विकास के कार्य में दिलचस्पी न रही, तो जैसे कि उपनिषदों ने कहा है——मनुष्य अंधेरे में प्रवेश करता है। उन दिनों विनाश के कार्यक्रम की बात थी, तो उसमें त्याग भी करना पड़ता था, तरह-तरह की मुसीबतें उठानी पड़ती थीं। अब तो यह बात नहीं रही। ऐसी हालत में अगर मनोवृत्ति वही रही, तो कार्य-कर्ताओं में भोगपरायणता आएगी, जिससे कांग्रेस निकम्मी बन जायगी। लेकिन अभी अगर वे शरणार्थियों का काम हाथ में ले लेते हैं तो कांग्रेस को परिश्रम करने का मौका मिलेगा, और जनता से उसका संपर्क बढ़ेगा। आज तो कांग्रेसवालों का जनता से संपर्क भी कम हो रहा है। समाजवादी कांग्रेस में से निकल गए हैं। दूसरे नौजवान असंतुष्ट हैं। बाकी लोगों में से कुछ सरकार में संमिलित हो गए हैं, और कुछ सत्ता-परायण बन गए हैं। सत्ता-परायण वृत्ति ही रही तो कांग्रेसवाले आपस में लड़ते रहेंगे, पक्षोपपक्ष बढ़ेंगे और कांग्रेस निस्तेज हो जायगी। उससे तो कांग्रेस को अभी ही खत्म करना अच्छा है, जिससे कम-से-कम उसका अच्छा स्मरण तो बना रहेगा। अगर भोग-वृत्ति से, आलस्य से उसके तेज को क्षीण होने देंगे तो उसका अच्छा स्मरण भी दूषित हो जायगा।

इसलिए कांग्रेस के कार्यकर्ताओं से मेरी प्रार्थना है कि वे शरणार्थियों के काम को अपनाएं। उससे उनकी चित्त-शुद्धि होगी और दुःखी भाइयों को मौके पर मदद मिल जायगी। दुःख के समय देश ने उन्हें मदद दी इस बात से उनके दिल में देश के प्रति उपकार-बुद्धि और प्रेम रहेगा; तो आगे चलकर

उनमें से भी अच्छे देश-सेवक पैदा होंगे। बाकी के सब काम जरा अलग रखकर हम इस समय इसी काम में लग जांय तो कोई नुकसान नहीं होगा, बल्कि दूसरे सारे काम इसमें चरितार्थ होंगे। समुद्र-स्नान में सारी नदियों के स्नान का पुण्य मिल जाता है, वैसी यह बात है।

राजघाट, दिल्ली
३०-४-४८

: १७ :

मूर्ति-पूजा का रहस्य

जेल में भाई गोविंददासजी से मेरा परिचय हुआ था। तबसे हमारा मानसिक संबंध दृढ़ बन गया है। उनके मन में था कि इस मंदिर का उद्घाटन मैं करूं। उन्होंने मुझे सूचित भी किया था। लेकिन मेरा कुछ हठीला स्वभाव रहा है। मैं देहात की सेवा में लगा था। उनका तो शायद यह काम मुझसे ही लेने का निश्चय था। आखिर भगवान की इच्छा से मुझे अपना काम छोड़ कर दिल्ली जाना पड़ा। यह देखते ही गोविंददासजी ने मुझे पकड़ लिया। अब उन्हें मैं इन्कार नहीं कर सका, और यहां आ गया हूं।

यह मंदिर आरंभ से ही हरिजन समेत सबके लिए खोला जा रहा है, यह कोई विशेष बात नहीं मानी जानी

चाहिए। लेकिन मानी जाती है। क्योंकि बीच के जमाने में हिंदुओं के मंदिर सबके लिए खुले नहीं थे, और अब भी सारे नहीं खुले हैं। उस समय शायद इस प्रतिबंध के पीछे कुछ विचार भी रहा हो। लेकिन आज की हालत में हरिजनों को मंदिर में न आने देना अधर्म ही है। उसे दूर करने की बहुतों ने कोशिश की, और वह भावना अब कम होती जा रही है। हमारे धर्म में प्राचीन काल से यह बात नहीं थी। वेदों में "पञ्चजनाः यज्ञीयास"—यानी यज्ञ के योग्य पंचजन, ऐसा उल्लेख आया है। पंचजन का मतलब है सारा मानव-समाज। ब्राह्मण आदि चार वर्ण और उनके बाहर जो बचे वे पंचम, मिलाकर सारा मानव-समाज पंचजन में आ जाता है। गीता में भगवान के शंख को 'पांचजन्य' नाम दिया है। भगवान के शंख की आवाज पंचजन के, यानी सबके लिए है ऐसा उसका मतलब है। इस तरह प्राचीन काल में वैदिक धर्म मानव-मानव में भेद नहीं करता था। लेकिन बीच में संकीर्णता आ गई, जिससे अस्पृश्यता का विचार उत्पन्न हुआ। वह अब जा रहा है यह खुशी की बात है।

इस मंदिर में हरिजनों को प्रवेश मिल रहा है, इसके अलावा सब धर्मों के ग्रंथों की प्रतिष्ठापना का एक विशेष कार्य भी यहां किया जा रहा है। वर्धा के एक व्याख्यान में मैंने सुझाया था कि हरिजनों को मंदिर-प्रवेश देनेमात्र से मंदिर-सुधार का काम पूरा नहीं होता। अब तो एक कदम आगे बढ़ कर मंदिरों की मार्फत सब धर्मों के समन्वय का काम होना चाहिए। हिंदुस्तान की यह विशेषता है कि अच्छे

विचारों का वह निरंतर समन्वय करता आया है। शंकर आदि महान् आचार्यों ने अपनी बुद्धि इसीमें लगाई थी। जैनों ने तो समन्वय का सिद्धांत ही मान लिया है। उसे वे सम्यक्त्व कहते हैं। हर एक चीज के अनेक पहलू होते हैं, उन सबको मिला कर साथ का पूरा दर्शन होता है। इसलिए किसी एक ही पहलू का आग्रह नहीं रखना चाहिए। यह समन्वय की दृष्टि है। इस तरह का समन्वय, प्राचीन काल में उपनिषद्, गीता आदि का हुआ । बाद में मध्य युग में शैव, वैष्णव आदि पंथों का भी हुआ। अब भिन्न-भिन्न धर्मों का समन्वय करना बाकी है। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, आदि अनेक धर्म यहां हैं। हिंदुस्तान ने सबका स्वागत किया है। ईसाई धर्म तो—जैसा कि अकसर लोग नहीं जानते हैं—ईसा की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही ईसा का शिष्य सेंट टामस हिंदुस्तान में लाया। मलबार में उसका मिशन काम करता रहा। इतने प्राचीन काल से उस धर्म को हिंदुस्तान ने यहां स्थान दिया। इसी तरह पारसी, यहूदी आदि दूसरे धर्मों को भी हिंदुस्तान ने स्थान दिया। यह इसी समन्वय की भावना से हो सका है। लेकिन सर्व-धर्म-समन्वय का प्रत्यक्ष कार्य अबतक नहीं हुआ है। वह अब मंदिरों को करना है। इस मंदिर में सब धर्मों को स्थान देना इस विचार की स्वीकृति है। मैं मानता हूं कि हिंदूधर्म के उपासक यह समन्वय पूरा किये बगैर नहीं रहेंगे।

मंदिरों पर अनेक आक्षेप किये जाते हैं। यहां उन पर थोड़ा विचार करना ठीक होगा। उनमें एक आक्षेप यह है :—

"मंदिरों में कई तरह का अनाचार होता आया है, और हो रहा है। कई मंदिर व्यभिचार के अड्डे बन गए हैं। इसलिए मंदिरों को खतम ही करना चाहिए।" दरअसल यह कोई विचार का आक्षेप नहीं है। यह एक प्रतिक्रियामात्र है। मंदिरों में से अगर अनाचार मिट जायं, तो यह आक्षेप स्वयं खतम हो जाता है। और यही उसमें से लेना है। मंदिरों में अगर अनाचार निहित ही होता, जैसे अग्नि के साथ धुआं होता है, तो मंदिर तोड़ने पड़ते। लेकिन वैसी बात नहीं है, इसलिए इस आक्षेप को हम छोड़ दें।

दूसरा आक्षेप यह है। "ईश्वर को किसीने देखा नहीं है। श्रद्धा से उसे मान लेते हैं। और उस श्रद्धा के आधार पर मंदिर बनाकर पूजा करते हैं। यह मिथ्याचार है"। ईश्वर के अस्तित्व के बारे में मैं दलील नहीं करूंगा। इतना ही कहूंगा कि यह आक्षेप अविचार-मूलक है। उसमें कुछ अहंकार भी है। अनेक सत्पुरुषों ने ईश्वर का साक्षात्कार और वर्णन भी किया है। ऐसी हालत में हम यह कहने का साहस कैसे कर सकते हैं कि ईश्वर है ही नहीं? हम इतना ही कह सकते हैं कि हमने उसको देखा नहीं है। लेकिन जिन्होंने ईश्वर-साक्षात्कार का वर्णन किया है वे भ्रांत या मिथ्यावादी थे ऐसा हम नहीं मान सकते हैं। और उन सत्पुरुषों की बात मानकर जो श्रद्धा से ईश्वर की पूजा करते हैं, उनको हम दोष भी नहीं दे सकते हैं। मैं कभी इंग्लैंड नहीं गया, लेकिन इंग्लैंड नाम का एक देश है इस बारे में मुझे शंका नहीं है। क्योंकि मैंने नहीं, तो भी दूसरों ने इंग्लैंड देखा है। ऐसे कई

दृष्टांत दिये जा सकते हैं। व्यवहार में हर चीज को निज अनुभव से ही हम मानते हैं ऐसा नहीं होता।

तीसरा भी एक आक्षेप तात्त्विक विचार का है। "परमेश्वर किसी एक ही मूर्ति में नहीं हो सकता, वह तो सब जगह है। 'सब में रम रहिया प्रभु एकै, पेख पेख नानक बिहँसाई,' सब दुनिया में ईश्वर भरा है, उसे देख कर आत्मानंद का अनुभव करना चाहिए। उसके बदले मूर्ति-विशेष की पूजा करने का अर्थ यह होगा कि परमेश्वर दूसरी जगह नहीं है। इसलिए ऐसी पूजा उचित नहीं है।" मेरी नम्र राय है कि यह आक्षेप भी एकांगी है। परमेश्वर का वर्णन एक ही तरह के विशेषण से नहीं हो सकता। मनुष्य की वाणी में उसका वर्णन करने की शक्ति ही नहीं है। फिर भी मनुष्य अपने समाधान के लिए उसका वर्णन करने की चेष्टा करता है तो विरोधी विशेषणों का प्रयोग करना पड़ता है। परमेश्वर के व्यापक होने पर भी मूर्ति-विशेष में उसकी अभिव्यक्ति हो सकती है। दुनिया में बिजली भरी है, लेकिन विशेष तरकीब से, विशेष स्थान में वह प्रगट होती है। वैसे जहां हमारी मानसिक भावना रहती है वहां परमेश्वर हमारे लिए प्रगट हो जाता है। अपनी भावना के अनुसार मनुष्य उपासना करता है तो उसमें परमेश्वर की व्यापकता का निषेध नहीं है। स्वामी दयानंदजी किसी मूर्ति को देखने गये तो उन्हें उस पर चूहे खेलते हुए दिखाई दिये। उनके मन में विचार आया कि यह कैसा भगवान है जिसपर चूहे खेलते हैं? फिर वे चिंतन में मग्न हो गए। और विश्वव्यापक भगवान का ध्यान

करने लगे। उनके दृष्टांत का मैं खंडन नहीं करना चाहता हूं। क्योंकि किसी दृष्टांत के निमित्त से कभी कोई महान् विचार मनुष्य को मिल जाता है। लेकिन उस दृष्टांत से मुझे उलटा ही विचार सूझा। मुझे लगा—जिसपर चूहे खेलते होंगे वह जरूर भगवान होना चाहिए। चूहे भगवान के बदन पर नहीं खेलेंगे तो क्या बिल्ली के बदन पर खेलेंगे ? सारांश, जैसा सोचेंगे वैसा सूझेगा।

और भी एक आक्षेप आता है। "हमें तो मानव की सेवा करनी चाहिए। किसी प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को खिलाना, गंदे को नहलाना यही परमेश्वर की सर्वोत्तम सेवा है। मानव-रूप में जो ईश्वर है उसकी उपेक्षा करके अनखाने देव को नैवेद्य चढ़ाना यह काहेका धर्म ?"। इस आक्षेप में भी विचार-दोष है। जो मनुष्य के साथ दयालु बर्ताव नहीं करता और पाषाण-मूर्ति की पूजा करता रहता है, वह ढोंगी कहा जा सकता है। लेकिन जो मनुष्य प्राणि-सेवा में मग्न है उसे भी मूर्ति-पूजा उपयुक्त हो सकती है। मानव की सेवा मानव का सर्व-प्रथम कर्तव्य है इसमें कोई शंका नहीं। लेकिन हम देखते हैं कि मानवों में विकार होते हैं। जो सेवा करता है उसमें और जिसकी सेवा की जाती है उसमें भी। ऐसी दशा में हमारी सेवा में भी दोष पैदा हो जाता है, और मानव में भगवान का अंश देखने का भाव हमेशा नहीं टिकता। जिसकी सेवा की जाती है उसके विकार की प्रतिक्रिया सेवा करनेवाले के मन पर होती है। इसका एक उपाय मानव ने यह किया कि निर्विकार पत्थर को प्रतीक मान कर उसमें

मानव की परिपूर्ण आकांक्षा भर दी। दूसरी भाषा में, उस निर्विकार पत्थर में ईश्वर का आरोपण करके उसकी वह पूजा करने लगा। और उसकी पूजा द्वारा अपने अहंकार और विकार को शून्य बनाने की कोशिश करने लगा। मानव का परम आदर्श वही मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान माना गया है। योगसूत्र ने भगवान की व्याख्या "रागद्वेषादि-रहित पुरुष विशेष" ऐसी की है। उसकी उपासना करने से मनुष्य धीरे-धीरे निरहंकार बनता है। एक भाई ने मुझसे पूछा, प्रार्थना में इतना समय क्यों दिया जाता है? वह भी सेवा में लगाना बेहतर नहीं होगा? मैंने कहा 'सेवा की कीमत उसके परिमाण पर निर्भर नहीं है। सेवा में वृत्ति जितनी निरहंकार रहेगी उतनी सेवा की कीमत बढ़ेगी। मैंने दस सेर सेवा की, लेकिन चालीस सेर मेरा अहंकार रहा तो मेरी सेवा की कीमत १०/४० यानी १/४ हो गई। इससे उलटे एक मनुष्य ने एक तोला भर सेवा की, लेकिन उसका अहंकार शून्य है, तो उसकी सेवा की कीमत १/० तोला, यानी अनंत होगी। हम जानते हैं कि गणित में विभाजक शून्य रहा तो भागाकार अनंत आता है। अहंकार शून्य करने में प्रार्थना मदद दे सकती है। निरहंकारता से सेवा की कीमत बढ़ती है, और अहंकार से घटती है। सुदामा के मुट्ठीभर तंदुल की कीमत उसकी निरहंकारता के कारण पृथ्वी के मूल्य की हो गई। सोचने से मालूम होगा कि इसमें गहरा सार भरा है। पत्थर की मूर्ति खड़ी करके उसके सामने सिर झुका कर साधक निरहंकारता का अभ्यास करते हैं। मूर्तिपूजा अभ्यास का एक साधन है। अभ्यास की दृष्टि

रही तो साधन काम आते हैं। अभ्यास की दृष्टि न रही तो उत्तम साधन भी निकम्मे हो जाते हैं। लेकिन उसमें साधन का दोष नहीं है; दृष्टि के अभाव का दोष है।

जिन्होंने भगवान की मूर्ति की कल्पना की वे पागल नहीं थे। उससे मनुष्य की काफ़ी चित्तशुद्धि हुई है। एक ज़माना था जब मनुष्यने अपनी कला और सौंदर्यवृत्ति का सारा प्रदर्शन मंदिरों में किया। मूर्ति में भगवान की भावना करके मनुष्य ने अपना विकास किया। मूर्ति न होती तो बगीचे में से--फूल तोड़ कर मनुष्य उसको अपनी नाक में लगाता। लेकिन भगवान की मूर्ति पर फूल चढ़ा कर--जो कि फूल के लिए सर्वोत्तम स्थान है--मनुष्य ने अपनी गंधवासना संयत और उन्नत की। अपनी वासना को मिटाने के लिए भगवान के समर्पण की युक्ति मनुष्य ने निकाली। रामदास स्वामी ने लिखा है "देवाचें वैभव वाढ़वावें"--भगवान का वैभव बढ़ाओ। हम भगवानका वैभव क्या बढ़ायेंगे? वह महान् है, हम रंक हैं। परमेश्वर का वैभव बढ़ाने की कोशिश करने में हम अपना जीवन उन्नत करते हैं। रामदास स्वामी की सीख शिवाजी ने समझ ली। रायगढ़ में, जो शिवाजी की राजधानी थी, उसने अपने लिए मकान बनाये जिनकी निशानी तक बाकी नहीं रही; और प्रतापगढ़ में उसने देवीका मंदिर बनाया, जिसे २५० साल के बाद भी मैंने अच्छी हालत में देखा है। रामदास स्वामी की शिक्षा का यह दर्शन था।

मेरे भाइयो! भगवान का वैभव बढ़ाना, यही चीज़ मानव-देह में करने लायक है। वाणी से भगवान का गुणगान

करें, हाथों से उसकी सेवा करें, और अपनी बुद्धि को शुद्ध बनाएं। बुद्धि की शुद्धि के लिए भगवान की भक्ति से बढ़ कर कोई भी साधन आजतक अनुभव में नहीं आया। शंकराचार्य महान् ज्ञानी हुए। अद्वैत की गर्जना करते थे। लेकिन मलबार से चलकर हिमालय की तरफ जाते हुए रास्ते में जो बड़े-बड़े मंदिर मिले उन पर उन्होंने स्तोत्र रचे है। कितने नम्र वे बने ? क्या वे नहीं जानते थे कि यह पत्थर की मूर्ति मनुष्य के द्वारा बनाई हुई है ? यह भगवान कैसे हो सकती है ? लेकिन मूर्ति के सामने उनका सिर झुक जाता था। नदियों पर भी उन्होंने सुंदर स्तोत्र रचे। सार इतना ही है कि किसी तरह भगवान की भक्ति करो और चित्तशुद्धि साध लो। मानव-देह का यही अधिकार है। यह जिन्होंने समझा उनका जीवन धन्य हुआ।

मानव-देह कितनी कीमती चीज़ है ? लेकिन हमने आजादी के अवसर पर मानव की प्रतिष्ठा खोई है। किसी को कतल करना मामूली बात हो गई है। बच्चों को भी कतल करते हैं। स्त्रियों की बेइज्जती करते हैं। और यह सब धर्म-रक्षा के नाम पर करते हैं। जिस देश में वेद भगवान का अवतार हुआ, जहां उपनिषद् का निर्माण हुआ, अनेक संत पुरुषों ने जिस भूमि को पावन किया, उस भूमि वाले हम लोग कितने गिर गये। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि हमें वह सद्बुद्धि दें।

खंडवा
७–५–४८

: १८ :

सब धर्मों की सिखावन

यहां, अजमेर में मैं उर्स के निमित्त आया हूं। गांधीजी ने इस मौके पर यहां आने का वादा किया था। लेकिन उस वादे को वे पूरा नहीं कर सके। इसलिए मैंने यहां आना अपना फर्ज समझा।

ऐसे उत्सवों का पड़ना हरएक के लिए आनंद और संतोष का प्रसंग होना चाहिए। लेकिन दुर्दैव की बात है कि आज हिंदुस्तान में ऐसी हवा चली है कि कभी धार्मिक उत्सव आता है तो डर-सा छा जाता है। दशहरा आता है, ईद आती है तो डर हो जाता है कि न मालूम अब क्या होगा, ऐसी दुर्दशा हिंदुस्तान की हुई है। लेकिन इस वृत्ति का धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म के नाम का उपयोग करके राजकीय महत्वाकांक्षा रखनेवाले लोगों को बहकाते हैं। जो सच्ची धर्म-निष्ठा रखते हैं उन्हें इन बुरी बातों से बचना चाहिए।

यहां अजमेर में सब धर्म के लोग रहते हैं। अनेक धर्मों का यह केन्द्र है। मुसल्मानों का तो यह मशहूर केन्द्र है। हिंदुओं का भी है। आर्यसमाजी भी यहां काम करते आए हैं। जैन भी यहां के प्रसिद्ध हैं। इस तरह जहां सब धर्मों के लोग रहते हैं वहां का जीवन आनंदमय होना चाहिए। क्योंकि सब धर्मों ने परस्पर प्रेम भाव रखने की ही शिक्षा दी है।

गीता ने तो स्पष्ट कहा है कि हर एक को अपने-अपने

धर्म पर चलना चाहिए और चलने देना चाहिए। जिसकी जिस पर श्रद्धा है, वही उपासना उसके लिए अनुकूल है।

यही बात कुरान में पाई जाती है। कुरान कहता है, हर एक कौम के लिए भगवान ने रसूल भेजे हैं। जितने रसूल दुनिया में भेजे गये हैं, सबकी जमात एक है। हर मजहब में जितने संत हुए हैं उन सबका हृदय एक है। आपस में जो भेद दिखाई देते हैं, वे अन्य लोगों के पैदा किये हुए हैं, संतों के नहीं।

जैनों ने बताया है कि परिपूर्ण विचार कहीं शब्दों में नहीं आता है। एक-एक पंथ में सत्य की एक दिशा दिखलाई देती है। एक ही दिशा को देखने से पूरा सत्य हाथ में नहीं आता। सब पहलुओं से देखना चाहिए, लेकिन एक पहलू का दूसरे पहलू से विरोध तो हो ही नहीं सकता।

आर्य-समाजी वेदों में श्रद्धा रखते हैं। वेद ने कहा है "एकं संत विप्रा बहुधा वदन्ति"। सत्य एक है, उसकी उपासना करने वाले अलग-अलग नामों से उसे पुकारते हैं। भिन्न-भिन्न जितने धर्म हैं वे सब अलग-अलग उपासनाएं नहीं तो क्या हैं? इस्लाम एक तरह की उपासना है, ख्रिस्ती धर्म दूसरी तरह की। हिंदूधर्म में तो उपासना के कई भेद हैं। लेकिन फिर भी सत्य एक ही है, इसलिए उन उपास-नाओं में विरोध नहीं होना चाहिए ऐसी आज्ञा वेद भगवान की है।

ईसाइयों के धर्मग्रन्थ में यही बात है। ईसा अपने शिष्यों

को कहते हैं "तुम यह न समझो कि तुम्हीं मेरे शिष्य हो और तुम्हारे ही मकान में मैं रहता हूं। दूसरे भी मेरे मकान पड़े हैं"। ईसा ने इस प्रकार अपने शिष्यों को सर्व-धर्म-समभाव समझाया है।

इस तरह किसी धर्म का किसी धर्म से विरोध नहीं है। सबका, किसी से विरोध है तो वह अधर्म से है। अधर्म का विरोध करने में सबको एक होना चाहिए। दुनिया में नास्तिकता फैल रही है। उसका प्रतिकार कौन करेगा? सब धर्म आस्तिक हैं, उन्हें नास्तिकता के खिलाफ लड़ना है। अगर वे आपस में लड़ते रहेंगे तो खुद खतम हो जायंगे और दुनिया में नास्तिकवाद फैल जायगा।

हिंदुस्तान में अनेक उपासनाएं चलती हैं उनकी झलक अजमेर में देखने को मिलती है। इसलिए मैं प्रार्थना करूंगा कि एक दूसरों के धार्मिक उत्सवों में हम शरीक हों और सबको अपने दिल में जगह दें। तभी हिंदुस्तान दृढ़ बनेगा और दुनिया का मार्गदर्शक होगा।

अजमेर
९-५-४८

: १९ :

निर्भय बनो

हिंदुस्तान में अभी जो बातें हुईं उनको आप सब जानते ही

हैं। लेकिन उन्हें भूल जाइए। बुरी बातें हमेशा भूलनी चाहिए। बुरी बातों को ही याद करते रहेंगे तो इन्सान, देखते-देखते हैवान बन जायगा। हमारे पुरखाओं ने हमें सिखाया है, ईश्वर को याद करो, नेक काम करो और बुरी बातें भूल जाओ। हिंदू-मुसलमान पहले जिस तरह मिल-जुल कर रहते थे वैसे ही अब उनको रहना है। यह तो पाक जगह है। सबको निडर होकर यहां आना चाहिए। खुदा से डरनेवाला और किसीसे क्यों डरेगा? दुनिया में चंद रोज ठहरना होता है। हमारे लिए, जिस दिन यहांसे जाने का तै हुआ है, उसी दिन जाना है। डर रखने से हम अपनी जिंदगी को बढ़ा तो नहीं सकते। डर रखने से इतना ही होता है कि हम खुदा को भूल जाते हैं, इन्सानियत को भूल जाते हैं। डरने वाला मौके पर ऐसे बुरे काम कर जाता है कि उसको ही बाद में ताज्जुब होने लगता है।

हिंदू-मुसलमान सब एक ही मिट्टी के पुतले हैं। मरने के बाद हिंदुओं का दहन होता है और मुसलमानों का दफन होता है। लेकिन आखिर होती है दोनों की एक ही मिट्टी। उस मिट्टी पर से हिंदू कौन थे और मुसलमान कौन थे यह पहचाना नहीं जाएगा। हम मिट्टी से पैदा हुए और मिट्टी ही में मिल जानेवाले हैं। बीच का चंद रोज का जीवन एक आजमाईश है। कुरान ने इसे फितना कहा है। मनुष्य की कसौटी करने के लिए खुदा ने उसको दुनिया में भेजा है। भगवान पैसे वाले को पैसा देकर अजमाता है कि यह अपने पैसे का उपयोग कैसे करता है, गरीबों को मदद पहुंचाता है या नहीं। भगवान

गरीब को गरीब रखकर आजमाता है कि वह हिम्मत रखता है या नहीं ?

जो लोग नेक काम करते हैं उनको अच्छा फल मिलता है। और बुरे काम करनेवाले को बुरा फल मिलता है। यही सब धर्मग्रंथों का सार है। उसको ध्यान में रख कर निडरता से ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। मैं आप से कहूंगा कि आप ईश्वर की इबादत के लिए बे खौफ यहां आते जाइए। उसकी कृपा से आपको तकलीफ नहीं होनेवाली है।

अजमेर
१०–५–४८

: २० :

सर्वधर्म-समादर

आज मैंने जो देखा और सीखा, वह आपके सामने रखना चाहता हूं। यहां तारागढ़ पर जो दरगाह है उसे देखने के लिए मैं प्रातःकाल पैदल गया था। रास्ते में पहाड़ पर ही एक चिल्ला है, वह भी देखा। जहां चालीस रोज कुछ तपस्या होती है, उसे चिल्ला कहते हैं। मुसलमान भाइयों ने बड़े प्रेम से मुझे सब दिखाया। मेरे, उनके बीच रहने से, उनके दिल को तसल्ली हुई, यह देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ। वहां एक बात और जानी। जिसका जिक्र मैं आज करनेवाला हूं।

दोनों मकान बनवाने में मरहट्टों ने सहायता दी है।

वैसा लेख भी वहां मौजूद है। जब यह जाना तब मुझे अचरज तो नहीं हुआ, आनंद हुआ। आप जानते हैं कि मरहट्टों की उन दिनों मुसलमानों से राजकीय लड़ाई जारी थी, फिर भी उन्होंने मुसलमानों के धर्म-कार्यों में मदद देना उचित समझा और अभिमानपूर्वक वैसा लेख भी लिखवाया। यह अच्छी तालीम रामदास स्वामी ने उन्हें दी थी। शिवाजी रामदास स्वामी के शिष्य थे। शिवाजी ने उन दिनों की जुल्मी सत्ता के विरोध में लड़ाई छेड़ी थी। और आजादी हासिल की थी। उनको रामदास स्वामी की शिक्षा थी कि सब धर्मों का समान आदर करना चाहिए। जिनके साथ लड़ाई होती है उनके भी धर्मकार्यों में मदद पहुंचानी चाहिए। शिवाजी के जीवन में हम यह देखते हैं। जहां मौका मिलता था वे मुसलमानों की मसजिद में जाते थे। रामदास स्वामी भी जाते थे। शिवाजी ने हज के यात्रियों के लिए उत्तम प्रबंध कर दिया था। इस तरह मुसलमानों के धर्म की वे इज्जत करते थे। यह सब मैं इसलिए बता रहा हूं कि उसपर से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

आज हिंदुस्तान में हमारे बीच कोई राजकीय झगड़ा नहीं रहा है। हिंदूमहासभा ने भी यह मान लिया है और उस तरह का प्रस्ताव भी पास किया है। यहां एक हुकूमत कायम हो गई है, जो सब की है। उसे मजबूत बनाना हर एक का फर्ज है। उसके लिए सब को देश में पूरी शांति रखनी चाहिए। किसी भी हालत में कानून को अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए। लेकिन इस बात को मैं छोड़ देता हूं। मुझे कहना यह था कि

राजकीय झगड़ा चालू हो तब भी धर्म के विषय में आदर बना रहना चाहिए । मैं, धर्म को माता की उपमा देता हूं । माता बच्चे को सहज मिलती है । जिसको जो मिली उससे वह पालन-पोषण पाता है । हमें अपनी माता की इज्जत और सेवा करनी चाहिए । जो अपनी माता की इज्जत करता है उसका स्वभाव ही होता है कि वह दूसरों की माताओं की भी इज्जत करता है । जो ऐसा नहीं करता है वह खुदकी माता की भी इज्जत नहीं करेगा ।

सब धर्म परमेश्वर की तरफ जाने के रास्ते हैं । कोई पूरब से है तो कोई पश्चिम से है । लेकिन भगवान के पास ही वे पहुंचाते हैं । इसलिए एक दूसरों के धर्म के विषय में पूज्यभाव होना चाहिए । एक दूसरों के धार्मिक उत्सवों में आनंद और भक्ति के साथ शरीक होना चाहिए । एक दूसरों के अच्छे विचारों का अभ्यास करना चाहिए ।

अभी हमने फातेहा सुना । वह कुरान का पहला अध्याय है । उसका उपदेश यही है कि भगवान हमें सीधी राह बतावें । टेढ़ी राह न बतावें । हम जानते हैं कि टेढ़ी राहें करोड़ों हो सकती हैं, लेकिन सीधी राह एक ही तरह की हो सकती है । दिशा चाहे जो हो उसका प्रकार एक ही होता है । सीधी राह बतानेवाले मंत्र, चाहे अरबी में हों संस्कृत में हों या तमिल् में हों ईश्वर के पास पहुंचानेवाले हैं । एक लफ्ज में कहा जाय तो सब धर्म सत्य के दर्शन के लिए हैं । सत्य का पूरा दर्शन इस देह में होना मुश्किल है । उसका एक पहलू भी हाथ आ जाय तो काम हो जाता है ।

अजमेर में प्राचीन काल से यह उर्स होता है। मैंने सुना है कि दूसरे धर्मवाले सत्-पुरुष यहां आते थे। बाबा नानक इस दरगाह में प्रार्थना करके गये हैं। ऐसा यह स्थान आपके यहां है इसका पूरा लाभ आपको उठाना चाहिए। लाभ यही कि जितने लोग यहां रहते हैं उन सबके दिल एक बनने चाहिए। अजमेर में धर्म के नाम से झगड़ा होने की आवाज कभी भी सुनाई नहीं देनी चाहिए।

अजमेर
१०-५-४८

: २१ :

सर्वधर्म-समभाव की व्याख्या

आप लोग जानते हैं कि मैं यहां उर्स के लिए आया हूं। कल जुम्मे का दिन है। कल दरगाह जाऊंगा और उनके रस्म-रिवाज और उनकी उपासना देखूंगा।

इस तरह एक दूसरों के उत्सवों में भाग लेना मुफीद है, इस बारे में एक दफा मैं बोल चुका हूं। एक भाई ने मुझसे सवाल पूछा कि "दूसरों के धार्मिक उत्सवों में आप जायंगे तो आपको नुकसान नहीं होगा ? यह हम समझ सकते हैं, लेकिन दूसरे सर्व साधारण लोग इस तरह करेंगे तो क्या उनकी स्व-धर्म-निष्ठा में कमी नहीं आएगी ? अपने धर्म में उनकी निष्ठा डिगेगी नहीं ?" यह सोचने लायक सवाल है।

मेरी राय में ऐसा होने का कोई कारण नहीं है। अनुभव भी ऐसा नहीं आया है। मान लो कि मैं अपने मित्र के यहां गया, उनकी बूढ़ी माता के दर्शन हुए. और उनको मैंने आदरपूर्वक प्रणाम किया, तो क्या उससे अपनी माता के प्रति मेरा आदर कम होनेवाला है? ऐसा तो देखा नहीं जाता है। मातृत्व का आदर करके जब मैं दूसरे की माता को प्रणाम करता हूं तो अपनी माता के प्रति मेरा आदर और भी दृढ़ होता है। वैसा ही यहां भी है। दूसरों के धार्मिक उत्सवों में जब हम शरीक होते हैं, और देखते है कि जो ईश्वर-निष्ठा हमारे धर्म ने हमें सिखाई है वही निष्ठा वहां देख पड़ती है--चाहे उसका ढंग दूसरा हो--तो हमारी स्व-धर्म-निष्ठा बढ़नी चाहिए। मेरे एक मित्र हैं, जो बरसों से तुलसी-रामायण बिना चूके नियमित पढ़ा करते थे। उन्होंने कोई दूसरी धार्मिक पुस्तक नहीं पढ़ी थी। बरसों बाद, किसी ने भागवत पढ़ने का उनसे आग्रह किया, और उन्होंने उसे पढ़ा। मैंने उनसे पूछा कि "आपके दिल पर भागवत पढ़ने का क्या असर हुआ?" उन्होंने जवाब दिया--"भागवत में भी वही भक्ति देखी जिसका वर्णन तुलसीदासजी ने रामायण में किया है। उससे रामायण में मेरी निष्ठा और भी दृढ़ हुई, और मैं अपना पाठ अधिक उत्साह से करने लगा"। अगर भागवत के पढ़ने से तुलसी रामायण के विषय में निष्ठा कम नहीं होती है--यद्यपि एक में कृष्ण-भक्ति का वर्णन है और दूसरी में रामभक्तिका--तो यही न्याय जब हम दूसरे धर्मों के ग्रंथों का अध्ययन करते हैं, और उनके धार्मिक उत्सवों में भाग लेते हैं तब भी लागू होना चाहिए। मेरे धर्म में जो

भक्ति सिखाई है वही इस्लाम में, वही ईसाई-धर्म में वही सिक्ख-धर्म में सिखाई है ऐसा अनुभव आता है; तो अपने धर्म में मेरी निष्ठा बढ़नी चाहिए या घटनी चाहिए ? अनेक गवाह अगर एक ही बात कहते हैं तो उससे बात मजबूत होती है कि कमज़ोर ? लेकिन निष्ठा का सवाल अनुभव का है। पूछनेवाले ने तर्क के आधार पर यह शंका की है। वह खुद जब अनुभव करेगा तब उसकी शंका मिट जायगी और निष्ठा दृढ़ होगी।

इससे और भी एक लाभ होता है। दूसरे धर्मों का अध्ययन करने से हमारा दिल विशाल बनता है। हमारे धर्म में जैसे जप, उपवास आदि होते हैं वैसे ही उनके धर्म में भी होते हैं, उत्सव के अवसर पर हमारे यहां जिस तरह दान आदि देने का रिवाज है वैसा ही उनमें भी है, हमारे यहां जैसे यात्रा का महत्त्व माना जाता है वैसा ही वे भी मानते हैं, हम एक ईश्वर की भक्ति करते हैं, वे भी एक ही खुदा को मानते हैं, प्रार्थना भी वैसी ही होती है—चाहे दूसरे नाम से और दूसरे ढंग से हो—जब हम यह सब देखते हैं तो सहज ही हमारी बुद्धि व्यापक बनती है। मैंने उन कुछ साधनों का यहां जिक्र किया है जिसको इस्लाम में "रुकने दीन" यानी धर्म के खंभे कहा गया है। आखिर धर्म का कार्य मनुष्य के हृदय को विशाल बनाना ही तो है ? सर्वत्र हरि विराजमान है, धर्म यही सिखाता है। व्यवहार में व्यक्तियों का परिचय हमेशा उनकी उत्तम मनःस्थिति में नहीं होता जब कि धार्मिक उत्सवों में उनका जो परिचय होता है वह उनकी उत्तम हालत में तथा विशुद्ध रूप में होता है। और जब विशुद्ध परिचय होता है तो हृदय

में श्रद्धा बढ़ती है, हृदय विशाल बनता है, और हरि-दर्शन में मदद होती है।

एक सवाल हो सकता है। दूसरों के धार्मिक उत्सवों में जाकर यदि कोई चीज हम वहां देखें जो हमारे धर्म में न दिखाई देती हो, तो उस धर्म की तुलना में हमारी स्व-धर्मनिष्ठा नहीं डिग जायगी ? मैं कहता हूं——रीति-रिवाजों की तुलना करके अगर दूसरे धर्म में कोई अच्छा रिवाज दिखाई दे जो हमारे धर्म में नहीं है तो वह धर्म सुधार का कारण बन जाना चाहिए। उससे धर्म परिवर्तन या अपने धर्म की निष्ठा कम होने की बात नहीं आती। मान लो कि अपने बगीचे में मैंने अच्छे-अच्छे फल लगाए हैं, लेकिन जब मैं दूसरों का बगीचा देखने गया तो वहां कुछ दूसरे भी अच्छे फल, जो मेरे बगीचे में नहीं हैं मुझे दीखे तो उसका अनुकरण करके अपने बगीचे में भी मैं वैसे फल लगाऊंगा या उसे उखाड़ ही दूंगा ? इससे ध्यान में आयगा कि हम सबको धर्म सुधार का काम करना होगा। तुलना से डरना नहीं होगा। बुद्धि की कसौटी से डरेंगे तो इस जमाने में श्रद्धा टिकनेवाली नहीं है और टिकी भी तो किसी काम की नहीं होगी।

जब हम सर्व-धर्म-समभाव की बात करते हैं तो दूसरे धर्मों का परिचय भी उसके लिए जरूरी है। सर्व-धर्म-समभाव में मैं चार चीजें आवश्यक मानता हूं। पहली चीज है स्व-धर्म-निष्ठा। दूसरी अन्य धर्म का आदर। तीसरी सर्व-धर्म-सुधार, जिसके बगैर मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता। और चौथी बात, जो इन तीनों में से सहज ही निकलती

है---अधर्म का विरोध है। ये चारों चीजें एकत्र होती हैं तब सर्व-धर्म-समभाव सिद्ध होता है।

हमारे पूर्वजों ने धर्म-सुधार का कार्य निरंतर किया है। संस्कृत-साहित्य में जो उदारता और सहनशीलता मैंने देखी वैसी शायद ही कहीं देखने को मिले। सांख्य और योग, वेदांत और मीमांसा, सभी एक जगह फले, फूले और खिले। दर्शनों के बारे में वाद और चर्चाएं होती रही और सारे दर्शन विकसित हुए। जिस धर्म में छः छः दर्शन है वे दूसरे धर्मों के परिचय से क्यों डरें ? दूसरे धर्मों का अभ्यास करेंगे, उनमें जो अच्छी चीज होगी वह हम लेंगे, हमारे धर्म में जो अच्छी चीज होगी वह वे लेंगे, और इस तरह प्रेमपूर्वक सब की उपासनाओं का अभ्यास करेंगे। रामकृष्ण परमहंस ने सब धर्मों की उपासनाओं का अभ्यास किया, तो उनको सर्व-धर्म-समन्वय का अनुभव हुआ। और स्वधर्म में उनकी निष्ठा भी कम नही हुई, बल्कि बढ़ी। वैसे हमें भी अनुभव होगा और हमारी भी निष्ठा बढ़ेगी।

अजमेर
१३-५-४८

: २२ :

क्षमा-प्रार्थना

आज आपके बीच यहां आया हूं तो मुझे निहायत

खुशी हुई है। महात्माजी यहां आनेवाले थे। उन्होंने वैसा वादा किया था। लेकिन भगवान की मर्जी दूसरी थी। आप जानते ही हैं कि दुनिया में वही होता है जो अल्लाह चाहता है। इन्सान की मृत्यु कब कहां और कैसे होगी यह अल्लाह ही जानता है, इस तरह के जुमले कुरान में मौजूद हैं। मैं यहां आया हूं तो महात्माजी के वादे को पूरा करने नहीं आया हूं। वह जो कर सकते थे वह मैं क्या कर सकता हूं! जो ताकत भगवान ने उनको दी थी वह मुझे नसीब नहीं है। मैं तो आप से हमदर्दी जताने के लिए आया हूं। अभी आपको सुनाया गया कि मैं गांधीजी का मिशन चलाने के लिए आया हूं। चाहता तो जरूर यही हूं, लेकिन भगवान जैसा चाहेगा वैसा होगा। मैं तो अपने को उसका अदना-सा खिदमतगार मानता हूं। यह भी एक भाषा ही है। दरअसल अल्लाह को खिदमत की जरूरत ही कहां है! वह तो 'गनी' बे परवाह है। उसकी खिदमत के नाम से हम अपना ही भला करते हैं। इन्सान की जबान में अल्लाह का बयान करने की ताकत ही कहां है? फिर भी वह उसकी कोशिश करता है और अपने दिल को तसल्ली देता है। कुरान में कहा है कि सारा दरिया स्याही बन जाय और सारे दरख्त कलम बन जायं तो भी खुदा का पूरा बयान नहीं हो सकता। यही बात संस्कृत के एक श्लोक में कही है। फिर इन्सान बयान करने की कोशिश करता है, तो इतना ही कह पाता है कि "अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर"—तू सबसे बड़ा है। यहां उसकी जबान रुक जाती है।

हर इन्सान को अल्लाह पर ईमान रखना चाहिए।

लेकिन ईमान रखने के मानी क्या है ? कोई भी कहेगा कि मैं ईमान रखता हूं । लेकिन कहना एक चीज है और करना दूसरी चीज है । हम जो कहते हैं उसका सबूत क्या है ? सबूत यही है कि हमारी करनी अच्छी होनी चाहिए । हमारे काम नेक होने चाहिए । गरीबों की सेवा हमें करनी चाहिए और खुदा को जताना चाहिए । ऐसा करते हैं तो हम अल्लाह पर ईमान रखते है, ऐसा कहा जायगा । वरना हमारे कहने की कोई कीमत नहीं है । कुरान में कहा ही है "लीम तकूलून मा ला तफ् अल्न ?" क्यों ऐसी चीज कहते हो जो करते नहीं हो ! जहां-जहां ईमान की बात कुरान में आई है, वहां वहां नेक काम करने की बात उसके साथ जोड़ दी गई है । आगे कहा है कि अगर बुरा काम करोगे तो बुरा फल पाओगे, और अच्छा काम करोगे तो अच्छा फल पाओगे । इसका अनुमान इस जिंदगी में न आया तो बाद में आयगा, लेकिन आयगा जरूर । यह जिंदगी एक कसौटी है । अल्लाह हमें उसपर कस लेता है । जो थोड़ा समय इन्सान को इस जिंदगी में मिला है उसमे नेक काम करके हम कसौटी पर खरे उतरते हैं तो भगवान की सच्ची भक्ति करते हैं ।

हमने हिंदुस्तान में इन दिनों बहुत बुरे काम किये हैं । हिंदू, मुसलमान, सिक्ख सब ने किये हैं । तो किसीसे क्या कहना ? खुदा से ही सच्चे दिल से कहें कि "तू ही हमारा मददगार है, हमें अक्ल देनेवाला है, हमने जो किया उसके लिए तू हमें मुआफी दे" । अगर वह हमें कसौटी पर कसना चाहता है तो जरूर कस सकता है और हमारी करनी के लिए सजा भी दे सकता है ।

लेकिन उसकी कसौटी पर खरे उतरनेवाले कौन हैं ? आखिर हमारा आधार यही है कि हम उससे क्षमा-याचना करें। इसलिए मैं हिंदू, मुसलमान, सिक्ख और सभी हिंदुस्तानियों की तरफ से आज यहां भगवान से प्रार्थना करता हूं कि वह हमें क्षमा करें।

मेरे भाइयो ! मैं अधिक बोलने की कोशिश करूंगा तो भी नहीं बोल सकूंगा। यह देश हम सबका है। हम सब यहां-की मिट्टी से पैदा हुए हैं और यहीं की मिट्टी में मिल जाने-वाले हैं। इसलिए आपस में मुहब्बत से रहिए। दिल में एक दूसरे के लिए जगह दीजिए। भाई-भाई की तरह रहिए। मैं तो ऐसे दिनों की राह देखता हूं कि हिंदुस्तान के सब धर्मों के लोग स्त्री और पुरुष एक जगह बैठेंगे और परमेश्वर का नाम लेंगे। पुरुषों के साथ स्त्रियां भी बैठ कर परमेश्वर का स्मरण करें ऐसा यहां रिवाज नहीं है। लेकिन हमेशा पुराने रिवाजों में ही नहीं रहना है। हमें तो आगे बढ़ना चाहिए। और ऐसा जमाना लाना है कि जब सब-के-सब भगवान के सामने खड़े होकर अपने भेदों को भूल जायंगे। भगवान के सामने खड़े रह कर भी अगर हम दिल में भेद रखते हैं, तो हम सच्चे अर्थ में भगवान के सामने खड़े ही नहीं हुए। सूरज के सामने सितारा खड़ा हो जाय तो क्या वह अलग चमक सकता है ? आखिर हमें भगवान में ही समा जाना है। दुनिया में वही एक है, और बाकी कुछ नहीं है।

अजमेर
१४-५-४८

: २३ :

इस्लाम का उपकार

हिंदुस्तान में हिंदू और मुसलमान एक हजार साल से रहते हैं। अगर अभीतक वे एक दूसरे की खूबियां नहीं जानते हैं तो दुःख की बात है। कबीर नानक आदि संतों ने इस दिशा में प्रयत्न भी किये हैं।

मुसलमानों की एक मुख्य बात यह है कि वे एक ईश्वर को मानते हैं। इसे "तौहीद" कहते हैं। तौहीद यानी एकता। यह ऐसी बात है जो दिमाग को साफ रखती है। हिंदूधर्म भी परमात्मा की एकता को मानता है। लेकिन उपासना के लिए भक्त भगवान को अलग-अलग नाम से पुकारते हैं। भगवान के अनंत गुण हैं, जिस गुण की कमी भक्त अपने में देखता है उस गुणवाले परमात्मा का वह नाम लेता है, उसकी उपासना करता है। मेरे हृदय में दया की कमी मैं देखता हूं तो मुझे दयामय भगवान का स्मरण करना चाहिए, और सत्य की कमी मालूम होती है तो सत्य-स्वरूप परमात्मा की उपासना करनी चाहिए। इस तरह उपासनाएं अनेक हो जाती हैं। अलग-अलग गुणों पर से परमात्मा के अलग-अलग नाम पड़े हैं। लेकिन कभी कभी ऐसा होता है कि ऐसे अलग नामों के कारण गलतफहमी होती है। कुरान में भी इसका जिक्र आया है। महम्मद पैगंबर से पूछा गया है कि कभी अल्लाह कहते हो और कभी रहमान कहते हो, तो यह क्या

बात है ? क्या ये दो अलग-अलग देवता हैं ? तो जवाब देना पड़ा है कि अल्लाह और रहमान एक ही है । अभी हमने भजन में सुना "रहम करे रहमान"--जो रहम करता है उसका नाम रहमान है । ऐसे दूसरे भी नाम हैं । हिंदुओं ने उन नामों के अनुसार भगवान की अलग-अलग मूर्तियां बना दी हैं । मजदूरों के लिए जो अखबार होते हैं उनमें मोटे अक्षरों के अलावा चित्रों में खबरें छापी जाती हैं । वैसे ही ये मूर्तियां यानी भगवान के गुणों के चित्र हैं । उन चित्रों पर से उपासना करने का तरीका हिंदुओं ने निकाला । चित्रों से जैसे सहूलियत होती है, वैसे गलत खयाल भी आ सकता है । इसलिए चित्रों का मोह छोड़कर इस्लाम ने साफ तौर पर एक ही चीज को दुनिया के सामने रक्खा है । यह इस्लाम का उपकार है । उसकी हमें कदर करनी चाहिए । और सबका अंतर्यामी परमात्मा एक ही है यह विश्वास दृढ़ करना चाहिए ।

अजमेर
१४-५-४८

: २४ :

महान् राष्ट्र की जिम्मेदारी

आप लोगों के बीच में सात दिन ठहरा और आज यहां से जा रहा हूं । इतने दिन यहां रहा तो आप के घर का ही बन गया हूं । यहां के सब लोगों ने मुझ पर बहुत प्रेम बरसाया ।

कल मैं दरगाह में गया था; वहां की नमाज में हिस्सा लिया और दो शब्द कहे। सब लोगों ने बहुत प्रेम से सुना और अंत में हाथ में हाथ मिलाने के लिए लोगों ने जो चेष्टा की वह देखकर जी भर आया। दरगाह में ही शाम को हमारी प्रार्थना हुई, जिसमें गीता के श्लोक बोले गए। यह सब बहुत अच्छा है। यहांका वातावरण इन दिनों में बदल गया है। भगवान की असीम कृपा है और बापू की शहादत काम कर रही है। यह जो हवा अब यहां पैदा हुई है उसको कायम रखना आप सब का फर्ज है। अजमेर प्राचीन काल से अनेक संस्कारों की संयोग-भूमि रहा है। आप देखते हैं कि यहां हिन्दू और मुसलमान जैन और आर्यसमाजी चारों के केन्द्र हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यहां ब्रह्मदेव पुष्कर-क्षेत्र में विराजमान हैं, जो चारों मुख से सबका दर्शन लेते हैं और सबको दर्शन देते हैं। एक साल पहले यहां दुर्घटना हुई, लेकिन वह अब इतिहास में शामिल हो गई। अब तो केवल प्रेम का ही संदेश यहांसे चारों ओर जाना चाहिए।

हमारा हिन्दुस्तान एक बहुत बड़ा देश है। दुनिया भर के अनेक मानव-समाज यहां दाखिल हुए हैं। और यह राष्ट्र समूह-तुल्य देश बन गया है। ऐसे देश पर एक महान् जिम्मेदारी आती है। गांधीजी ने हमें अहिंसा का संदेश दिया। वह तो हिन्दुस्तान का संदेश है। गांधीजी केवल निमित्त बने। जिस देश में अनेक जमातें रहती हैं और जो देश खंडप्राय है, उसमें अहिंसा से ही आजादी और मानव-समाज टिक सकता है। मैं ऐसा माननेवाला हूं कि जीवन के हर हिस्से में और हर हालत

में अहिंसा का ही उपयोग करना चाहिए । लेकिन वह बात अभी आपके सामने मैं नहीं रख रहा हूं । एक मर्यादित क्षेत्र में आप से मैं अहिंसा की बात कर रहा हूं । सोचिए कि जहां इतने मुख्तलिफ समाज रहते हैं उस देश को हम किस तरह आजाद रख सकते हैं । उपाय उसका यही होगा कि यहांकी जो हुकूमत हो उसके हाथ में हम दंड-शक्ति दें और खुद अहिंसक होकर रहें । अगर हम ऐसा नहीं करेंगे और आपस-आपस में हिंसा का प्रयोग करते रहेंगे तो एक सर्वतोन्मुखी सत्ता यहां नहीं टिकेगी । इसलिए व्यक्तियों को अहिंसा की मर्यादा में ही रहना होगा ।

आगे चलकर सरकार के हाथ में दी हुई दंडशक्ति को भी हमें बेकार बनाना है । देश के आंतरिक कारोबार में उस शक्ति के उपयोग का मौका ही न आवे तो सरकार धीरे-धीरे लोगों में लीन हो जायगी और जिसको आध्यात्मिक अराजक कहते हैं—जो मानव का ध्येय है—आ जायगा । उसके लिए बीच की चीज है सरकार के हाथ में दंडशक्ति देकर आपस के व्यवहार में उसका उपयोग न करना । यही हिंसा में से अहिंसा में जाने का रास्ता है । इस रास्ते से हिंदुस्तान जाता है तो दुनिया का भी मसला हल हो जाता है, क्योंकि हिंदुस्तान एक छोटी दुनिया ही है । उसका उदाहरण दुनिया को अनुकरणीय हो सकता है । हिंदू लोग ध्यान के लिए भगवान की मूर्ति बनाते हैं तो उसके हाथ में शस्त्र रखते हैं । इसका अर्थ है कि भक्त अपने हाथ में शस्त्र नहीं रखता है । शस्त्र रखने का अधिकार भगवान को ही है । इस अवस्था तक

हम पहुंचते हैं तो हमारा बेड़ा पार है। लेकिन अगर वहां तक नहीं जा सकते तो कम-से-कम सरकार के हाथ में शस्त्र सौंप कर हम अहिंसा के उपासक बनें। ऐसा होगा तो देश में शांति और एकता की शक्ति रहेगी। जिस से बाहरी आक्रमण का संदेह मिट जाएगा। फिर सेना को कोई काम नहीं रहेगा और खेती का काम उसे दिया जाएगा। और लश्कर के अधिकारी भी खेती में लग जाएंगे। यह सब आदर्श समाज की रचना है, जो हमें करनी है।

यह ऐसा ध्येय है जिस से हिंदुस्तान के तरुणों के हृदय स्फूर्ति से भर जाने चाहिए। उनके ऊपर भारी जिम्मेदारी है। हिंदुस्तान ने अहिंसा के जरिए आजादी हासिल की है। आजादी की लड़ाइयां तो दूसरे देशों ने भी लड़ीं लेकिन अहिंसा का तरीका किसी ने अख्तियार नहीं किया था। इस शस्त्र का विकास अब हिंदुस्तान कैसे करता है इस तरफ दुनिया की नजर लगी हुई है। हमारे नौजवानों को समझना चाहिए कि पश्चिम के लोगों से हमें समाज-शास्त्र नहीं सीखना है। समाज-शास्त्र में पश्चिम के देश बच्चे हैं। हिंदुस्तान अनुभवी और पुराण-पुरुष है। उसने अपना एक व्यापक समाज-शास्त्र रचा है। उसे परिपूर्ण बनाकर हमें दुनिया को रास्ता बताना है। जो पागलपन पश्चिम में हो रहा है उसका अनुकरण हमें नहीं करना चाहिए। उसका अनुकरण हम करेंगे तो पाश्चात्यों के हम गुलाम बनेंगे और अपनी असलियत खोयेंगे। इसलिए हमारे तरुणों को अहिंसा की ताकत विकसित करनी चाहिए। हिंदुस्तान की सभ्यता का अभ्यास करना चाहिए। वेद से लेकर आज

तक जितने विचार-प्रवाह यहां हुए वे सब अहिंसा की ओर हमें ले जा रहे हैं, यह समझना चाहिए। हिंदुस्तान को जितनी महान् विरासत मिली है उतनी किसी दूसरे देश को नहीं मिली है। उस विरासत को कायम रखने और बढ़ाने की खास जिम्मेवारी हमारे ऊपर है।

अजमेर
१५-५-४८

: २५ :

अपरिग्रह की सादी युक्ति

मैं मानता हूं कि मनुष्य के सारे प्रयत्नों से वह चीज नहीं होती जो प्रार्थना से होती है। मनुष्य के प्रयत्नों को मैं बिजली के पंखे की उपमा दूंगा, और प्रार्थना की शक्ति को उपमा दूंगा बाहर की खुली हवा की--जो कि समुद्र या पहाड़ की तरफ से बहती हुई आती है। बिजली के पंखे से जो हवा पैदा होती है वह भी, सृष्टि में जो खुली हवा फैली है, उसी का छोटा हिस्सा है। वैसे ही मनुष्य का प्रयत्न भी परमात्मा की शक्ति का ही छोटा हिस्सा है। बिजली के पंखे से इतना ही होता है कि कमरे की ही हवा बहने लगती है, जिससे कुछ ठंडक मालूम होती है। लेकिन साथ-साथ कमरे के कोने में बैठे हुए जंतु भी शायद उड़ कर मनुष्य के फेफड़े में जाते होंगे। उपमा को छोड़ दीजिए। मेरे कहने का मतलब यह था कि

मनुष्य के प्रयत्न से कुछ अच्छा काम होता है तो सीमित मात्रा में और कुछ बुरा काम भी उससे होता ही है। प्रार्थना या भगवान की भक्ति से तो शुभ ही होता है, और वह भी असीम। मनुष्य के अंतर में शुभ और अशुभ दोनों तरह की वृत्तियां हैं। लेकिन अंतरतर में तो शुभ ही भरा है। प्रार्थना से उस अंतरतर में प्रवेश होता है।

लेकिन आज तो मैं दूसरी ही बात कहनेवाला था। मैं जहां-जहां गया वहां जो देखा उससे एक वस्तु साफ दिखाई दी कि हिंदुस्तान के गरीब लोगों की हालत बिगड़ती ही जा रही है। स्वराज मिलने के बावजूद उनको राहत नहीं मिल रही है। अगर हम देश में शांति चाहते हैं तो उनके लिए फौरन हमें कुछ करना चाहिए। वर्धा में रचनात्मक काम करनेवालों की सभा में मैंने कहा था कि यदि हम अहिंसक समाज-रचना करना चाहते हैं तो अपरिग्रह का खयाल रखना चाहिए यानी जिनके पास संपत्ति है उन्हें सच्चे अर्थ में उसके ट्रस्टी बनना चाहिए, तभी अहिंसा का दर्शन होगा। नहीं तो उत्तरोत्तर अशांति बढ़ती जायगी। उसके आसार भी मैं देख रहा हूं। वर्धा की सभा में जब अपरिग्रह की बात मैंने रखी तब यह सवाल उठा था कि जरूरत से ज्यादा संपत्ति अपने पास नहीं रखनी चाहिए इस बात को तो हम मानते हैं, लेकिन किसकी जरूरत कितनी है यह कौन तय करे? अपरिग्रह एक विचार है। वह विचार अगर मनुष्य के हृदय में प्रवेश करता है तो वही मनुष्य को सुझाएगा कि उसके लिए कितने संग्रह की आवश्यकता है। वह अपने लिए जो

भी तय करेगा उससे मेरा समाधान हो जायगा, बशर्ते कि वह अपरिग्रह के विचार को सच्चे दिल से मानता है।

इस विषय में एक सादी सूचना मैं करूंगा। जिसके दो बच्चे हैं वह अपने तीन बच्चे हैं ऐसा समझे। यह तीसरा बच्चा यानी गरीब जनता। वह बच्चा दुनिया में पड़ा है। उसके लिए अपनी संपत्ति का, बुद्धि का, समय का उतना हिस्सा दें तो सारा सवाल हल हो जाता है। घर में अगर नया बच्चा पैदा हुआ तो कोई शिकायत तो नहीं करते। बल्कि अपने जीवन को उस तरह ढाल लेते हैं। वैसे ही गरीब जनता के लिए हम करेंगे तो अपरिग्रह का अच्छा आरंभ होगा और उसकी व्याख्या करने की जरूरत नही रहेगी। हिंदुस्तान को उत्तम दरिद्रता देकर भगवान हमारी कसौटी कर रहा है। गांधी जी के चले जाने के बाद तो अब हमारी और भी कसौटी होनेवाली है। आप जो चंद लोग यहां इकट्ठे हुए हैं उनके भी दिल में अगर अपरिग्रह की यह सादी युक्ति जंच जाती है तो उसका कभी-न-कभी दूसरों को स्पर्श हुए बगैर नहीं रहेगा, और ईश्वर की कृपा से कसौटी में हम पार उतरेंगे।

राजघाट, दिल्ली
२१-५-४८

: २६ :

व्यापक आत्मज्ञान

आप लोगों ने सुना ही है कि किंग्स्वे कैंप में आग लग गई थी। लोग वहां मदद के लिए पहुंच गए हैं, और कुछ सेवा कर रहे हैं वैसे तो यह अच्छा है। लेकिन सहज ही मन में सवाल उठता है कि क्या यही मदद पहले नहीं पहुंचाई जा सकती थी ? लेकिन हिंदी समाज का आत्मज्ञान बहुत संकुचित हो गया है। कुछ दया-भाव बचा है। और जब कभी भारी मुसीबत आ पड़ती है तो वह जागृत हो उठता है। कुछ मदद पहुंचाने के बाद वह दया का आवेग शांत हो जाता है, और हम फिर से अपने देह के कामों में गिरफ्तार हो जाते हैं। अगर व्यापक आत्मज्ञान होता तो महान् आपत्ति की राह देखे बिना हम पहले ही सेवा में लग जाते । माता अपने बच्चे पर भारी आफत आने पर ही मदद के लिए नहीं दौड़ती है। वह तो निरंतर ही उसकी सेवा में कुछ-न-कुछ त्याग करती रहती है। क्योंकि वह पहचानती है कि बच्चा मेरा है, मेरा ही स्वरूप है। इसी को आत्मज्ञान कहते हैं। हम इस देह में ही बद्ध नहीं हैं, हमारा स्वरूप व्यापक है, इस चीज का ज्ञान होना ही आत्मा का ज्ञान है। माता का आत्म-व्याप्ति का भान उसके बच्चों तक ही सीमित रहता है, आगे नहीं बढ़ता। इसलिए एक दृष्टांत के तौर पर ही हम उसको ले सकते हैं, यद्यपि वह आत्मज्ञान का उत्तम दृष्टांत नहीं है।

व्यापक आत्मज्ञान का परिणाम तो यह होगा कि इर्द गिर्द की सृष्टि और समाज की सेवा में जीवन की चरितार्थता मालूम होगी, उसके बिना जीवन निरर्थक लगेगा।

हिंदुस्तान में यद्यपि तत्त्वज्ञान की चर्चा बहुत हुआ करती है, फिर भी आत्मज्ञान की अनुभूति नही है। अपने कुटुंब से आगे हमारा आत्मज्ञान बढता ही नहीं। आध्यात्मिक उन्नति की कल्पना में भी संकुचितता और स्वार्थ-बुद्धि आ गई है। मैं अक्सर लोगों को यह पूछते हुए सुनता हूं "क्या प्रार्थना एकांत में करना बेहतर नहीं है ?" फिर उन्हें समझाना पड़ता है कि वह एकांत में भी करनी चाहिए। लेकिन उतने से उसका कार्य पूरा नहीं होता। हम समाज में रहते हैं तो हमारी साधना में सामुदायिकता होनी चाहिए। तभी आत्मा की व्यापकता का अनुभव हो सकता है। कोई यह नहीं पूछता "खाने के लिए मित्र-मंडलियों को क्यों बुलाया जाय ?" लेकिन प्रार्थना के लिए यह सवाल उठता है। मतलब में आत्मिक उन्नति का योग्य खयाल हम लोगों को नहीं है। हिंदूधर्म में गायत्री-मंत्र मशहूर है। वह ध्यान का और प्रार्थना का अप्रतिम और सर्वोपरि मंत्र माना जाता है। वह एकांत में ध्यान करने का मंत्र है, उसके बारे में ऐसा खयाल है। लेकिन उसमें भी उपासक अपने को समुदाय का हिस्सा मान रहा है। "भर्गो देवस्य धीमहि" इसमें बहुवचन का प्रयोग है। लेकिन एकांगी बुद्धि होने के कारण वह ध्यान में नहीं आया। हमारे सद्गुण भी सीमित हो गए हैं। घर को साफ करेंगे लेकिन घर के बाहर कचरा फेंक देने में संकोच

नहीं होता है। हमारे सद्गुण प्रवाहित नहीं हैं। सामाजिक स्वरूप उन्हें नहीं मिला है। इसीका नतीजा है कि हिंदुस्तान बरसों से गुलामी में रहा। अब भी वह इसलिए आजाद हुआ कि आत्मा की व्यापकता का कुछ खयाल हमें हुआ है। लेकिन यह खयाल समाज के हृदय में पूर्ण रूप से दाखिल नहीं हुआ है। वह होगा तब हिंदुस्तान दुखी देश नहीं रहेगा। भगवान ने इस देश की भूमि समृद्ध बनाई है। सूर्यनारायण की असीम कृपा यहां रही है। असंख्य नदियों के रूप में परमेश्वर की करुणा ने हमें आप्लावित किया है। यहां की जमीन सब तरह शस्यशालिनी है। इतना होते हुए भी हम अगर दुःख में पड़े रहते हैं तो उसका कारण यही है कि आत्मा की व्यापकता की ओर हमने ध्यान नहीं दिया है। आत्मविद्या सब विद्याओं में श्रेष्ठ है। और हमें आज उसी की अत्यंत आवश्यकता है। इसलिए मुझे हमेशा लगता है कि माता-पिता बच्चों को आत्मा का ज्ञान कराना अपना पहला कर्तव्य समझें।

राजघाट, दिल्ली
२८-५-४८

: २७ :

स्वराज्य यानी रामराज्य

सन् १९०७ की बात है। गांधी जी ने "हिंद-स्वराज" नाम की किताब लिखी। उसमें उन्होंने स्वराज की अपनी

कल्पना का स्पष्ट चित्र दिया है। और उसकी प्राप्ति के साधन भी बताए हैं। पुस्तक के आखिर में उन्होंने लिखा है "भगवान साक्षी है, इसी स्वराज की प्राप्ति के लिए मेरी जिंदगी समर्पण है।" यह एक अद्वितीय बात है कि एक मनुष्य ने स्वराज के ध्येय को भी स्पष्ट देखा, उसके साधन का भी निश्चय किया और चालीस साल तक उसी रास्ते से हिंदुस्तान को वह ले गया। आखिर किसी तरह का एक स्वराज्य हमने पाया।

जो साधन उन्होंने तय किया था उसका नाम 'सत्याग्रह' रखा गया। सत्याग्रह यानी केवल सविनय कानून भंग नहीं। अपने जीवन में निरंतर सत्य का आग्रह रखना 'सत्याग्रह' कहलाता है। और सत्य का आग्रह अहिंसा द्वारा ही रखा जा सकता है, इसलिए अहिंसा की बात भी उसमें आ गई। इस तरह साधन का निश्चय करके दक्षिण अफ्रिका में पहले उन्होंने उस साधन को आजमाया। वहां कामयाब होकर वे हिंदुस्तान आए और पूर्ण श्रद्धा से यह नया साधन हिंदुस्तान के लोगों के सामने उन्होंने रखा।

इस साधन पर उनकी कितनी श्रद्धा थी। कहते थे कि इस साधन पर अमल करने की ही देर है, स्वराज्य में देर नहीं है। एक मरतबा तो जाहिर भी कर दिया कि जो कार्य-क्रम तय हुआ है उसका पूरी तरह से अगर देश अमल करेगा तो एक साल के अंदर स्वराज्य मिल सकता है। और वह आंदोलन साल भर उन्होंने चलाया। मुझे याद है कि साल पूरा होने में १८ दिन बाकी थे। हम उस समय साबरमती

आश्रम में थे। आश्रम में कोई बोल उठा कि "बापूजी, वर्ष समाप्त होने में केवल चंद दिन बाकी हैं, और स्वराज्य के तो कोई लक्षण नहीं दीखते।" तो उन्होंने कहा देखो! श्रद्धा मत छोड़ो। १८ दिन में महाभारत की पूरी लड़ाई लड़ी गई थी, अब भी अगर इस कार्यक्रम को पूरा करेंगे तो १८ दिन में भी स्वराज्य हमारे हाथ में आ सकता है।"

वर्ष पूरा हो गया और स्वराज्य हाथ में नहीं आया। क्योंकि हमने उस कार्यक्रम को पूरा नहीं किया था। लेकिन गांधी जी यही कहते रहे कि वही एकमात्र मार्ग है। उसीसे स्वराज्य आनेवाला है। उस श्रद्धा का थोड़ा अंश आखिर हमें छू गया, और स्वराज्य का दर्शन हमने किया। लेकिन बापू जी को उस स्वराज्य से समाधान नहीं हुआ। वे अत्यंत दुःखी रहे। मैजिनी का भी ऐसा ही हुआ। इटली ने जो स्वराज्य प्राप्त किया उसका रूप देख कर वह व्यथित हो गया था। कहता था कि यह स्वराज्य मेरा नहीं है। यही गांधी-जी ने कहा। क्योंकि किसी भी तरह के देशी राज का अर्थ स्वराज्य नहीं है। स्वराज्य, यानी 'स्व' का राज्य, यानी हर एक का राज्य। यह मेरा राज है ऐसा हर एक को लगना चाहिए, तब वह स्वराज्य होता है। इसीको गांधी जी 'राम-राज्य' भी कहते थे। रामराज्य का वर्णन तुलसीदास जी ने इस तरह किया है—

"बैर न कर काहू सन कोई।
राम-प्रताप विषमता खोई॥"

बैर का अभाव और विषमता न होना ये दो रामराज्य

के लक्षण हैं। यही व्याख्या गांधी जी ने भी की थी। लेकिन उन्होंने देखा कि जहां स्वराज्य का दर्शन हुआ, बैर का शमन होना तो दूर रहा लेकिन बैर की आग इस तरह भड़क उठी कि शायद ही उसकी कोई मिसाल हो। यह देख कर स्वाभाविक ही वह दुःखी रहते थे।

अब हमारा यह कर्तव्य है कि जिस चीज का पालन गांधी-जी के जीते हमने नहीं किया वह अब हम करें। स्वराज्य के वे दोनों लक्षण हमें पूर्णतया सिद्ध कर देने चाहिए। हिंदुस्तान में इतने विविध समाज रहते हैं तो वे मित्र-भाव का सबक सीखने के लिए हैं ऐसा हम समझें। अपनी उदार संस्कृति का यह अर्थ अगर हम लेंगे तो बैर-भाव भी मिटेगा और विषमता भी खतम हो जायगी।

अपनी आज की विषमता का चित्र यहीं हम देख सकते हैं। एक तरफ उन शरणार्थियों का जीवन और एक तरफ हमारा जीवन। कहां उनके वे तंबू और कहां हमारे राज-प्रासाद। इस राजधानी में नजदीक ही दोनों चित्र हैं। प्रभु रामचंद्रजी का वर्णन तुलसीदासजी ने किया——

"प्रभु तरु-तर कपि डार पर, ते किये आपु समान"

प्रभु रामचंद्र पेड़ के नीचे बैठते थे, और जो उनके सेवक थे——बेवकूफ बानर——वे पेड़ के ऊपर बैठते थे। ऐसे सेवकों से प्रभु ने काम लिया और अपने समान सबको बनाया, यानी सबको अपना दर्जा दिया। वैसे हमारे ये भी जो सर्वोच्च समर्थ हैं उसे सर्वोत्तम सेवक होना चाहिए। तब हमें सच्चे स्वराज्य का दर्शन होगा।

लेकिन अभी उस दर्शन से हम कितने दूर हैं। यहीं देखो न, हजारों हरिजन उस पंजाब से इधर आ रहे हैं। वे चाहते हैं कि यहां उन्हें जमीन दी जाय। लेकिन उनको कहा जाता है कि "आप जहां थे वहां तो आपके पास जमीन नहीं थी, वहां आप खेत पर मजदूरी ही करते थे, तो फिर आपका खेती पर क्या हक? वहां जिनके खेती थी उन्हींको, और उसी अनुपात से यहां खेती मिलेगी।" मतलब नई समाज-रचना करते समय भी हम वही पुरानी विषमता का चित्र गणित के हिसाब से कायम रखना चाहते हैं।

इसमें परिवर्तन करने के लिए हमें अपने जीवन से ही आरंभ करना होगा। जो जहां खड़ा है वहांसे उसे नीचे उतरना होगा। जब मैं ऐसी बात करता हूं तो हमारे कुछ मित्र कहते हैं कि हमें तो नीचेवाले को ऊपर उठाना है, हमें क्यों नीचे उतरने को कहते हो? लेकिन मेरी अर्ज है कि नीचे वालों को उठाने के लिए ही आप नीचे उतर आइए। माता बच्चे को उठाने के लिए नीचे झुकती है, वैसे ही हमें नीचे झुकना चाहिए। और नीचेवालों को ऊपर उठाना चाहिए। तभी विषमता मिटेगी, और तभी सच्चा स्वराज्य आयगा।

यह हमारा आदर्श है। और बापू का स्मरण यानी उसीका स्मरण है। बापू की स्मृति से स्फूर्ति लेकर उसीके लिए हमें प्रयत्न करना है। वह करेंगे तो बापू की स्मृति को हम जिंदा रखेंगे।

राजघाट, दिल्ली
३०-५-४८

: २८ :

ध्यान की वेला

डेढ़ महीना पहले मैं यहां आ चुका हूं। अब दुबारा यहां आने का मौका आया। बिहार को एक पुण्यभूमि की तौरपर हम सब याद करते आए हैं। वैसे तो सारा हिंदुस्तान ही एक विशाल पुण्यभूमि है, जहां के कोने-कोने में अनादि काल से सत्पुरुषों द्वारा पवित्र संस्कारों का प्रचार होता रहा है। कई राज्य यहां आए और गए, लेकिन शुभ संस्कारों का राज्य यहां हमेशा रहा। दूध की उत्तमता जैसे उसमें मक्खन का परिमाण कितना है, इससे आंकी जाती है वैसे ही समाज की योग्यता उसमें कितने सत्पुरुष पैदा हुए इससे अनुमान की जाती है। सत्पुरुष आसमान से नहीं उतरते। जिस समाज में वे पैदा होते हैं उस समाज का सारा पुण्य उनके रूप में प्रगट होता है। समाज के वे मक्खन होते हैं। दूसरी भाषा में कहें तो वे समाज-पुरुष होते हैं। इस भूमि की यह विशेषता रही है कि हरेक जमाने में—गिरी हुई हालत में भी—सत्पुरुषों की परम्परा यहां अविच्छिन्न रही है। ऐसे ही एक पुरुष गांधीजी हो गए। हमारा देश अंग्रेजों के कब्जे में चला गया था। उसके उद्योगधंधे खत्म कर दिए थे। उसको पूरी तरह निःशस्त्र कर दिया गया था। इतना ही नहीं, बल्कि पश्चिम की संस्कृति से लोग प्रभावित होते जा रहे थे। ऐसी हालत में गांधी जी आए और उन्होंने हिंदुस्तान को अहिंसा का मंत्र दिया। यह कोई नया

मंत्र नहीं था। हिंदुस्तान की संस्कृति का ही यह पैगाम था।

इतने बड़े विशाल मुल्क को हमने एक राष्ट्र माना था, यही हमारी अहिंसा का एक लक्षण है। आधुनिक भाषा में कहा जाय तो राष्ट्रीय-वाद से हिंदुस्तान कब का परे हो चुका था। हिंदुस्तान में आंतरराष्ट्रीय-वाद चलता था। रामेश्वर के मनुष्य को समुद्र का पानी काशी विश्वेश्वर के मस्तक पर चढ़ाने की प्रेरणा होती थी और काशी के मनुष्य को गंगाजी का पानी रामेश्वर की मूर्ति पर डालने की उत्सुकता रहती थी। और वह भी उस जमाने में जब कि आवागमन के आज के जैसे साधन सुलभ नहीं थे। यह एक सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा का महान् प्रयोग था। अनेकों को जो एक रखती है, भेदों में से अभेद को ढूंढती है, वही अहिंसा है। और जो फूट डालती है, भेद बढ़ाती है, वही हिंसा है। हिंदुस्तान की संस्कृति का साररूप अहिंसा-शस्त्र गांधीजी ने हिंदुस्तान को दिया। और हिंदुस्तान गुलामी से छूट गया। उन्होंने संदेश दिया कि अहिंसा का पालन करके मिल-जुल कर रहोगे तो टिकोगे, इतना ही नहीं बल्कि दुनिया के गुरु बन जाओगे। दुनिया आपकी तरफ आशा से देख रही है। लेकिन उन्हींके एक पुत्र ने उनका अंत कर दिया। और वह भी तब, जब कि उनकी अत्यंत आवश्यकता थी। इसके आगे अब हिंदुस्तान से बाहर के क्षेत्र में उनका कार्य शुरू होने वाला था। वह कार्य इतना महान् था कि शायद उनके एक शरीर द्वारा वह पूरा नहीं हो पाता। इसलिए भगवान ने चाहा कि उनके विचार को एक शरीर में से मुक्त करके लोगों के असंख्य शरीरों में प्रवेश करने का मौका दिया जाय। इस तरह

हम सोचें तो एक गांधी गया और उसकी जगह अनेक गांधी पैदा हुए, ऐसी स्थिति हो सकती है।

जब एक युग खतम होकर दूसरा युग शुरू होने की तैयारी होती है तब बीच का कुछ ऐसा समय होता है जिसे किसी भी युग का नाम नहीं दे सकते। हम देखते हैं न? रात खतम हो गई और सूरज उगा नहीं ऐसे बीच के समय उषा होती है, जो न रात में गिनी जाती है, न दिन में। वैसे ही गुलामी का युग तो गया, लेकिन स्वतंत्रता का युग अभी नहीं आया है ऐसे बीच के समय में हम हैं। लोगों को लगता है कि स्वतंत्रता आ गई है। लेकिन वह गलत खयाल है। स्वतंत्रता अभी आने को है। हम तो अभी संधिकाल में हैं। इस संधिकाल में अध्ययन करने की जरूरत होती है। अपने देश की रचना कैसी करनी है इस बारे में सोचने का यह समय है। इस सोचने के समय में जल्दबाजी करना ठीक नहीं है। अभी तो ध्यान-योग का मौका है। इस वक्त सब से पहले हिंदुस्तान में पूरी एकता स्थापित करने की जरूरत है। उस एकता के कायम हो जाने के बाद बहुत सारे कार्यक्रम वेग के साथ किए जा सकते हैं। अभी उस बारे में उतावल करने की जरूरत नहीं है। लेकिन लोगों को अपना-अपना कार्यक्रम और अपनी-अपनी कल्पनाएं आगे बढ़ाने की उतावल हो रही है। आज कोई साम्यवाद की बात करता है तो कोई सनातन धर्म के गीत गाता है। मैं कहता हूं जरा सब्र करो और सोचो। अभी सब्र से कोई नुकसान होने वाला नहीं है। पहले एकता स्थापित करो। बाद में जो कुछ करना है किया जा सकता है।

यही देखो न, अभी लोगों को भाषावार प्रांत रचना की फिक्र लग रही है। मैं कहता हूं कि उसमें उतावल करने की जरूरत क्या है? वह तो होने वाली ही बात है, क्योंकि उसके पीछे विचार है। जनता की सेवा करनी है तो जनता की भाषा में ही हो सकती है। इसलिए राज्य कारोबार भी जनता की भाषा में ही चलना चाहिए। भाषावार प्रांत रचना के पीछे यही विचार है। लेकिन उस बारे में इतना अभिनिवेश और परस्पर विसंवाद क्यों हो रहा है? भाषावार प्रांत बनेंगे। उनकी सीमाएं एक समिति के द्वारा मुकर्रर की जाएंगी। लेकिन आज तो इस विषय में भी परस्पर विद्वेष बढ़ रहा है। यहां तक कि राष्ट्र-भाषा प्रचार से भी प्रांतीय भाषाओं को खतरा मालूम होता है। दर असल इसमें कोई खतरा नहीं है न कोई विरोध है। हिंदुस्तान की बहुत सारी भाषाएं एक ही संस्कार के भिन्न-भिन्न प्रकाशन हैं और किसी एक के विकास से दूसरे किसी को खतरा नहीं है। किसी एक का हित दूसरे के हित से विरोधी नहीं है।

सर्वोदय शब्द इसी तरह के विचार में से निकला है। सर्वोदय यानी सब का उदय। एक के उदय में दूसरे का भी उदय। एक मानव के, जाति के, समाज के, देश के, धर्म के हित में दूसरे किसी मानव का, जाति का, समाज का, देश का, धर्म का हित-विरोध नहीं होता है। सबका हित अविरोधी है। और सबका उदय एकत्र हो सकता है।

धर्म के प्रचार का नाम आजकल हम संख्या से करते हैं। लेकिन इससे अधिक गलत विचार और क्या हो सकता है?

वास्तविक धर्म आत्मा का विषय है। दुनिया के जितने धर्म हैं, सब भगवान के गुणों की अलग-अलग तरीकों से उपासना करने के लिए हैं। उनमें विरोध कैसे हो सकता है? वे तो एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। एक दूसरे की पुष्टि या शुद्धि या पूर्ति कर सकते हैं। एक के विकास में दूसरे का भी विकास होता है। एक व्यक्ति के कल्याण में दूसरे व्यक्ति का, और सारे समाज का कल्याण होता है, और समाज के कल्याण में हर एक व्यक्ति का कल्याण होता है। यही सर्वोदय की श्रद्धा है। इसी श्रद्धा की आज हिंदुस्तान को जरूरत है और यही हिंदुस्तान की संस्कृति है। हर एक व्यक्ति में, कुल में और समाज में कुछ गुण-विशेष होते हैं। उनका लोप नहीं, उनका पोषण ही करना है। जो राष्ट्र उन अलग अलग गुण-विशेषों के पोषण की उपेक्षा करेगा वह घाटे में रहेगा। हमें वैसा नहीं करना है। सबका अपने अपने ढंग से विकास होने देना है। लेकिन सबके अंदर रही हुई एकता की अनुभूति सर्व-प्रथम होनी चाहिए। उसीके आधार पर गुण-विशेषों का विकास हो सकता है। उसका आधार छोड़ देंगे तो गुण-विशेषों का गुण मिट जायगा और वे दोषरूप बन जायंगे।

आज सर्वत्र भेद-बुद्धि जोर कर रही है। और मुझे इससे आश्चर्य भी नहीं होता है, क्योंकि राज्यक्रांति के मौके पर महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति और शक्तियां अपने-अपने स्वार्थों के लिए देश में भेद पैदा कर देती हैं। फिर भी मैं अपने अनु-भव से देख रहा हूं कि आज जो भी हिंदुस्तान को अभेद और

एकता का संदेश सुनाता है उसकी बात लोग आतुरता से सुनते हैं। आप भी कितनी तन्मयता से मेरी सुन रहे हैं यह मैं देख रहा हूं। यहां की संस्कृति में ही यह बात भरी है। हिंदुस्तान की जनता का हृदय एक है। ऋषियों की तपस्या का मूर्तिरूप हिमालय जब तक खड़ा है और परोपकार की मूर्तिरूप गंगामैया जब तक बहती है, तब तक हिंदुस्तान का हृदय एक रहनेवाला है। लाखों लोग सूर्य-चंद्रादि के ग्रहणों के मौके ढूंढ कर गंगा जी में स्नान करते हैं और अपने को पावन महसूस करते हैं। उसमें उनको क्या मिलता है? उसमें हिंदुस्तान की एकता का दर्शन उनको होता है। हमारे देश की नदियां, हमारे देश की मिट्टी हमें पावन लगती है। यह एक पागलपन ही है। लेकिन इस पागलपन में एक महान् ज्ञान है। और मैं मानता हूं उसके सामने सारे भेद गायब हो जानेवाले हैं, जैसे प्रकाश के सामने अंधकार। अंधकार अभावरूप है, उसका नाश होनेवाला ही है।

पटना
१-६-४७

: २६ :

तंगी का इलाज

अभी मैं बिहार हो आया। वहां रचनात्मक काम करने-वालों का संमेलन था। बिहार में कार्यकर्ताओं का अच्छा

जमाव है। सबने एकत्र होकर काम करने का प्रस्ताव किया। चरखा संघ की यही नीति है कि हर प्रांत स्वतंत्र बुद्धि से अपना-अपना काम करे। उसी नीति के अनुसार बिहार प्रांत स्वतंत्र होकर अच्छा काम कर रहा है।

लेकिन मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य होता है कि देश में कपड़े की इतनी तंगी और चरखा संघ के प्रयोगों के बावजूद खादी के बारे में न तो लोग ही गंभीरता से सोचते हैं और न नेताओं के ही दिमाग में यह बात आती है। खादी एक बिलकुल सादी-सी बात है। शायद इसीलिए वह ध्यान में नहीं आ रही है। देशभर में कपास हो सकती है, चरखे बन सकते हैं, सिर्फ कातना सिखाने की व्यवस्था करनी होगी। चरखासंघ का पचीस साल का अनुभव है, उसकी मदद मिल सकती है।

लेकिन खद्दर से कपड़े का सवाल हल हो सकता है, यह बात ध्यान में नहीं आती। इसका कारण यही है कि हम पर पाश्चात्यों की विद्या ने जादू कर दिया है। हम आजाद तो हुए हैं, लेकिन बुद्धि की आजादी एक दूसरी ही बात होती है। मुझे डर है कि वह आजादी हमें अब तक हासिल नहीं हुई है। पाश्चात्यों ने एक अर्थशास्त्र बनाया है। उसके कुछ नियम बना रखे हैं। हमें डर है कि उन नियमों में शायद खादी नहीं बैठेगी। कांग्रेस की पंचायत के उम्मीदवार के लिए तो खद्दर पहनना लाजमी कर दिया है। जैसे शराबी, वैसे मिल का कपड़ा पहनने वाला भी कांग्रेस का उम्मीदवार नहीं हो सकता, ऐसा नियम बनाया है। खादी के लिए इतनी

निष्ठा प्रगट करते हुए भी वह अभी तक हमारे दिमाग में जमी नहीं है। बने बनाए अर्थशास्त्र के कानूनों का हमें डर लगता है।

लेकिन अर्थशास्त्र कोई गणित जैसा शास्त्र तो नहीं है। गणित के कानून मनुष्य की परवा नहीं करते। वे निरपेक्ष होते हैं। उन कानूनों को जान कर मनुष्य को अपना जीवन उनके अनुकूल बनाना होता है। लेकिन अर्थशास्त्र के कानून तो मनुष्य के बनाए हुए हैं। उनसे मनुष्य बाध्य नहीं हो सकता। हर एक देश का उसकी परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग अर्थशास्त्र हो सकता है। इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि हिंदुस्तान की एक विशेष हालत है, जो दुनिया में शायद ही किसी राष्ट्र की होगी। अंग्रेजों की हुकूमत में यहांके बहुत सारे उद्योग-धंधे टूट गए हैं। खेती फी आदमी मुश्किल से तीन चौथाई एकड़ है। केवल इतनी खेती के आधार पर यहांका किसान सुखी नहीं हो सकता। खेती में जो कच्चा माल पैदा होता है उसका पक्का माल जब तक किसान नहीं तैयार करता है तबतक वह सुखी बननेवाला नहीं है। खेत में कपास होती है, उसका उसे कपड़ा बनाना चाहिए। गन्ना होता है उसका गुड़ बनाना चाहिए। तिल्ली होती है उसका तेल बनाना चाहिए। इस तरह जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की चीजें उसे खुद बनानी चाहिए। गौण आवश्यकताओं की चीजें वह शहर के कारखानों से खरीद सकता है। इस तरह वह स्वावलंबी नहीं होगा तो नई दिल्ली-वाला स्वराज्य उसके क्या काम आयगा? स्वराज्य तो

किसान के लिए तब होगा जब हर देहात में अनाज के साथ-साथ कपड़ा पैदा होगा, ग्रामोद्योग की दूसरी चीजें बनेंगी, मकान भी वहींके सामान के बनेंगे, और काम के औजार भी वहीं के होंगे।

मैंने ग्रामोद्योग के साथ मकान बनाने का जिक्र किया है, वह भी सोचने लायक है। यहीं देखो। निर्वासितों के लिए मकानों की सख्त जरूरत होते हुए भी मकान नहीं बनते थे। क्योंकि हमारे इंजिनियरों को मिट्टी के मकान बनाने की बात सूझती ही नहीं थी। हमने आग्रहपूर्वक मिट्टी के मकान बनाने का प्रयोग करके देखा तो मालूम हुआ कि यहांकी मिट्टी घर बनाने के लिए बहुत अच्छी है। इसलिए अब वह काम शुरू हो गया है। बिहार में मिट्टी के मकान मैंने देखे। वहां बारिश भी बहुत होती है। फिर भी वे मकान बरसों टिकते हैं, ऐसा वहां का अनुभव है। लेकिन पाश्चात्य विद्या के कारण सादी बातें हमें सूझती नहीं। मकान की बात निकली तो सीमेंट हमारी आंखों के सामने आता है। ऐसा ही हाल खद्दर के बारे में हो रहा है। पाकिस्तानवाले भी अब खद्दर की बात कर रहे हैं। वे कोई खद्दर के प्रेमी तो नहीं हैं लेकिन आवश्यकता के कारण उनको वह करना पड़ रहा है। कांग्रेस का तो खद्दर से प्रेम भी है। फिर यहां राष्ट्रीय पैमाने पर खद्दर का अवलंबन क्यों नहीं करना चाहिए ?

मेरा तो निश्चित मत है कि अगर हम चरखे को अपनाएंगे, उसके शास्त्र का जितना अनुभव आया है उसका उपयोग

करेंगे तो दो साल के अंदर हिंदुस्तान के देहात की कपड़े की आवश्यकता आसानी से पूरी की जा सकेगी।

राजघाट, दिल्ली
११-६-४८

: ३० :

स्त्रियों का दायित्व

यहां की हमारी शरणार्थी सिंधी बहनों ने 'नारी-शाला' चलाई है। उसे देखने आज मैं गया था। वहां स्त्रियों को तरह-तरह के काम सिखाए जाते हैं जिनमें सिलाई का काम मुख्य है। यहां अजमेर में सिलाई का काम प्रायः मुसलमान करते थे। उनके जाने से यहां इस काम को करनेवालों की कमी हो गई है। मैं उम्मीद करता हूं कि इन स्त्रियों को यह काम अच्छी तरह मिल जाएगा और लोग कुछ अधिक दाम देकर उनसे यह काम लेंगे। हमारे यहां रिवाज है कि दान के मौके पर दान देते हैं, लेकिन जब बाजार में कुछ खरीदने जाते हैं तो कंजूसी की भावना रखते हैं। दरअसल खरीदते समय उदारवृत्ति रखनी चाहिए और काम करनेवालों को पूरे दाम मिलें, ऐसी इच्छा रखनी चाहिए। ऐसा होगा तो दूसरे किसी दान की जरूरत नहीं रहेगी। सच्चा दान गुप्त होना चाहिए। ऐसा गुप्त दान मजदूरी के रूप में ही दिया जा सकता है। मजदूरी देनेवाला यह नहीं मानेगा कि मैं

दान दे रहा हूं और लेनेवाला यह नहीं मानेगा कि मैं दान ले रहा हूं। जब दोनों की ऐसी भावना रहती है तब गुप्त दान होता है। और वही सच्चा दान है।

लेकिन आज मैं मुख्य रूप से यह बात नहीं कहना चाहता था। उस शाला में, मैंने, सिंधी स्त्रियों का सामुदायिक भजन सुना, जिससे चित्त प्रसन्न हुआ। उन्होंने नानक साहब के भजन सुनाए। एक सिंधी भजन भी सुनाया। महाराष्ट्र में इस तरह स्त्रियों के सामुदायिक भजन मैंने नहीं सुने। महाराष्ट्र में भजन तो हर गांव में चलता है लेकिन वह पुरुषों का होता है। स्त्रियां परमेश्वर की भक्ति करती हैं, गीत गाती हैं, लेकिन सामुदायिक तौर पर भजन करने का उनके यहां रिवाज नहीं है। सामुदायिक भजन में महान् शक्ति है। शरणार्थी स्त्रियों को सामुदायिक भजन गाते हुए मैंने सुना तो मुझे लगा कि जिन स्त्रियों के पास ऐसी महान् शक्ति पड़ी है, वे अगर यहां की स्त्रियों के साथ सामुदायिक भजन का प्रयोग करेंगी तो भगवान के नाम से सबके हृदय एकरूप बन जायंगे। हृदय में भक्तिभाव रख कर सामुदायिक भजन करती हुई शरणार्थी बहनें अगर यहां की बहनों में मिल जाती हैं तो यहां दोनों समाजों के बीच जो कुछ मनमुटाव है वह सब साफ हो जायगा। और शरणार्थियों के सवाल को, कुछ अंश में हल करने में वे मदद देंगी। मैं तो यहां तक मानता हूं कि जहां दो पागल टोलियां दंगा करने की तैयारी में हों उनके बीच यदि ऐसा सामुदायिक भजन शुरू किया जाय तो उस दंगे को वह भजन रोक सकेगा। दंगे मिटाने का यह

एक कारगर अहिंसक तरीका हो सकता है ।

गांधी जी ने बहुत बार कहा था कि अहिंसा की शक्ति प्रकट करने में स्त्रियां पुरुषों से अधिक योग्यता दिखायेंगी । गांधी जी की यह आशा सकारण थी । क्योंकि हमने देखा है कि हिंदुस्तान की बहनें जो सदियों से घर छोड़ कर बाहर नहीं गई थीं वे असहयोग के युग में हजारों की तादाद में बाहर आईं, और पुरुषों की बराबरी में उन्होंने काम किया । पुलिस के लाटीचार्ज का मुकाबला हिम्मत से किया । हजारों की तादाद में जेल में गईं । शराब की दूकानों पर स्त्रियों ने पिकेटिंग किया । लोगों को डर लगता था कि शराबियों के सामने स्त्रियां क्या करेंगी, लेकिन उन्होंने शराबियों को शरमाया और वे कामयाब हुईं । यह महान् जागृति हमने आंखों से देखी, उसका कारण यह था कि स्वतंत्रता की लड़ाई का, गांधी जी का तरीका अहिंसा का था, जिसमें स्त्रियों की शक्ति का विकास और दर्शन हो सकता था । हिंसा के आधार पर लड़ाइयां चलती थीं तो उनमें स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं होता था । इतना ही नहीं, बल्कि तब स्त्रियां रक्ष्य मानी जाती थीं । उनके रक्षण की ही फिक्र करनी पड़ती थी, लेकिन अब तो स्त्रियों को पुरुषों की मदद के लिए सार्वजनिक मैदान में आना चाहिए ।

अपनी सारी अक्ल लगा कर पुरुषों ने दुनिया का कारोबार इतना बिगाड़ दिया है कि २५ साल में दो जागतिक युद्ध हुए और तीसरे की तैयारी है । इसका अर्थ यह हुआ कि पुरुषों की अक्ल का दिवाला निकल चुका है । दुनिया को बचाने

का काम अहिंसा से ही हो सकता है। वह स्त्रियों की प्रवृत्ति के विशेष अनुकूल है। उन्हें चाहिए कि वे सार्वजनिक काम में उतरें और उसको ठीक शक्ल दें। बीमारों की सेवा का काम तो उनका खास काम है, लेकिन बच्चों की तालीम का काम भी उन्हीं के हाथ में होना चाहिए। राजकाज में भी उन्हें दखल देना चाहिए और पुरुषों के बिगाड़े हुए काम को सुधारना चाहिए, लेकिन यूरप में हम देखते हैं कि स्त्रियां पुरुषों का अनुकरण करके लश्कर में भी भरती होती हैं और यहां भी सुनते हैं कि कई स्त्रियां लश्करी तालीम की मांग कर रही हैं। स्त्रियों से हमारी यह अपेक्षा नहीं, उनका यह मार्ग नहीं है। उन्हें तो पुरुषों के आजमाए और निकम्मे साबित हुए तरीकों में क्रांति करनी है। इस काम के लिए हमारी माता, बहनें आगे आएंगी तो भारत माता का उद्धार अवश्य होगा।

अजमेर
१२-६-४८

: ३१ :

आंतरिक शांति की आवश्यकता

चंद दिनों से अफवाहें उड़ रही थीं कि दिल्ली में १५ ता० को कुछ गड़बड़ी होने वाली है। इसलिए दो चार रोज से गांव में मिलिटरी की गाड़ियां, पुलिस आदि घूमते हुए दिखाई

देते हैं। हमारे लिए यह बड़े शर्म की बात है। इस तरह हमारी सरकार की शक्ति अगर हम ज़ाया करेंगे तो हमारा राष्ट्र दुनिया में ताकत के साथ काम नहीं कर सकेगा। जिस देश की शक्ति आंतरिक शांति रखने में खत्म होती है वह कोई अमली काम नहीं कर सकता।

इतने बड़े मुल्क में विचारों में भेद हो ही सकते हैं। सबका एक विचार होना संभव नहीं है। इस दशा में दूसरी तरह के विचार रखने वाले अपने विचारों का प्रचार योग्य मर्यादा में कर सकते हैं। आज की हुकूमत जनता की है। लोग चाहें तो उसको बदल भी सकते हैं। जनता जिनको शासन का अधिकार देगी वे शासन करेंगे। ऐसी हालत में देश में शांति रखने का जिम्मा अलग-अलग विचार रखने वाले सब लोगों पर है। अपने विचार लोगों को समझा कर लोकमत अपने अनुकूल बनाने का हर एक को हक है। लेकिन वह काम इस ढंग से करना चाहिए कि जिससे देश में फसाद या अशांति पैदा न हो। देश में अशांति रहेगी तो सरकार को और सेवकों को शांति-स्थापना की ओर ही ध्यान देना पड़ेगा और गरीबों की सेवा का काम वैसे ही रह जायगा और अंतरराष्ट्रीय जगत में हमारा देश कमजोर साबित होगा।

यह सब मैं उन लोगों को समझाना चाहता हूं कि जिनको वर्तमान सरकार का रवैया संतोषकारक नहीं मालूम होता। इतने बड़े देश की स्वतंत्रता तभी टिक सकेगी जब हर एक अपनी अपनी मर्यादा को सम्हालेगा। मर्यादा को नहीं सम्हालेंगे तो निस्तंत्रता आएगी। यानी देश में अराजकता और अव्यवस्था

पैदा होगी और बाहर के आक्रमण की संभावना बढ़ेगी। सैकड़ों सालों के बाद जनता की सेवा करने की सत्ता हमारे हाथ आई है। उसको हमें टिकाना चाहिए। मर्यादा यही है कि लोग ठीक विचार करना सीखें, यह सीखें कि अपने वोट का उपयोग किस तरह करना चाहिए, किसी का किसी पर बलात्कार न हो, आपस-आपस में फसाद या झगड़े न हों। यह मर्यादा संभालेंगे तो हर किसीको अपने विचारों को फैलाने का मौका मिल सकता है।

राजघाट, दिल्ली
१६-६-४८

: ३२ :

चावल-तराशी बंद करो

अभी बिहार के कार्यकर्ताओं की संस्था में सरकार से मांग की गई है, कि चावल पालिश करनेवाली मिलें बंद की जायं। इस सवाल की ओर ग्रामोद्योग बनाम यंत्रोद्योग की दृष्टि से अभी मैं नहीं देखता हूं, यद्यपि इन मिलों ने गांवों के बहुत सारे मजदूरों को बेकार बनाया है लेकिन वह विचार इस समय मैं छोड़ देता हूं। अभी तो हिंदुस्तान के पोषण की दृष्टि से मैं इसका विचार करना चाहता हूं। हिंदुस्तान को अपना अनाज पूरा नहीं पड़ रहा है और बाहर के देशों से अनाज मंगाना पड़ता है। हमारे लिए यह बहुत शर्म की

बात है। इतने विशाल देश की आजादी के लिए यह शोभा नहीं देता है। ऐसी हालत में चावल को मिलों में पालिश करके उसका पोषकतत्त्व नष्ट क्यों किया जाय ? हिसाब लगाया गया है कि ४० तोले पालिश किए हुए चावल खाने से जो पोषण मिलेगा वह ३५ तोले पूर्ण चावल से मिल सकेगा। हमारा अनुभव तो ऐसा है कि पूर्ण चावल तो इससे भी कम लगता है। लेकिन ऊपर का हिसाब भी हम मान लें तो उसका मतलब क्या हुआ ? हिंदुस्तान के ३० करोड़ लोगों में से एक चौथाई यानी करीब सात करोड़ लोग चावल पर रहते होंगे ऐसा हम मानें, तो उतना ही चावल बिना पालिश का इस्तेमाल करने से आठ करोड़ लोग उसपर जियेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि चावल को पालिश करके एक करोड़ लोगों का अन्न हम बरबाद कर रहे हैं। दूसरी भाषा में, चावल की खेती करके फसल का आठवां हिस्सा हम जला देते हैं ऐसे कहा जायगा। क्या हिंदुस्तान की आज की हालत में यह गुनाह नहीं है ?

सब डाक्टरों की—जिनमें सरकारी डाक्टर भी शामिल हैं—राय है कि चावल को पालिश करने से इसका 'बी' विटैमिन नष्ट हो जाता है। जब हम लोग जेल में थे, सी० पी० सरकार ने इस विषय पर एक पत्रक निकाला था। उसमें पूर्ण चावल की सिफारिश की गई थी। इस पत्रक को पढ़कर जेल में हम लोग हँसते थे। क्योंकि सरकार अपनी जेलों को तो पालिश किया हुआ चावल ही देती थी। एक पत्रक निकालने से अपना काम पूरा हो गया ऐसा उसने मान लिया। लेकिन

कांग्रेस की सरकार है। अनाज की तंगी होते हुए क्यों न मिलें अब तो बंद की जायं! एक भाई ने मुझ से कहा "मिलों को बंद करने की जरूरत नहीं है। मिलें भी बिना पालिश का चावल आप को दे सकेंगी।" मैंने कहा "आज तो मुझे पोषण की दृष्टि से ही देखना है, इसलिए फिलहाल मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।" लेकिन उनकी मुसीबत यह है कि पूर्ण चावल अधिक दिन तक टिकता नहीं। कीड़े उस चावल को जल्दी खा जाते हैं। मैं कहता हूं जरा सोचिए तो! पूर्ण चावल को कीड़ा क्यों लगता है? क्योंकि वह अक्ल रखता है। वह जानता है कि उसमें पोषण है। उस कीड़े को जो अक्ल है उतनी तो हमें होनी चाहिए! बिना पालिश का चावल अगर ज्यादा दिन नहीं टिकता है तो उसकी कोई दूसरी व्यवस्था करो। लेकिन मिलों में चावल को पालिश करने की मनाही होनी चाहिए या फिर मिलें ही बंद होनी चाहिए।

पवनार गांव में बिना पालिश के चावल का हमने प्रयोग करके देखा। उसको खाने वाले देहाती भाई कहते थे कि उस में दिन भर काम में फुर्ती रहती है, और वे ज्यादा काम कर सकते हैं। उस चावल को पकाने में शहर वालों को दिक्कत मालूम होती है। लेकिन कुकर में भाप से पकाया जाय तो वह चाहे जैसा मुलायम पकाया जा सकता है। मेरी सूचना है कि आप लोग इस चीज पर विचार करें, और सरकार को जल्द से जल्द चावल की पालिश कतई बंद करने के लिए मनाएं।

राजघाट, दिल्ली

१८-६-४८

: ३३ :

आत्मौपम्य दृष्टि

पिछली बार मेवों के विषय में मैंने थोड़ा जिक्र किया था। इस हफ्ते में मैं इसी कार्य में लगा रहा। कल मेवात का एक दौरा कर आया। हजारों की तादाद में मेव सभा में आए थे। मैंने देखा कि वे बहुत दुःख में हैं। वैसे तो शरणार्थी भी दुःख में पड़े हुए हैं। लेकिन शरणार्थी की हैसियत से उनके लिए कैम्प आदि की कुछ व्यवस्था तो की गई है। इनकी बात दूसरी है। ये अलवर, भरतपुर में रहते थे और खेती करते थे। इन को वहां से भाग जाना पड़ा। इनमें से कुछ पाकिस्तान चले गए, कुछ लोगों ने यही रहना मुनासिब समझा और वे गुड़गांव जिले में रह गए। वे चाहते हैं कि उनको अपने घरों में बसाया जाय। हर कोई सोचे तो समझ सकता है कि उनकी यह मांग बेजा नहीं है। हमारी सरकार ने कई बार ऐलान किया है कि वह सांप्रदायिक ढंग से नहीं सोचेगी, जो भी देश के प्रति वफादार रहेंगे उनकी जिम्मेवारी उस पर रहेगी। अभी हमारे नए कुल-मुख्तार राजा जी ने अपने पहले ही व्याख्यान में कह दिया कि यह सब की सरकार है, यह कौम-कौम में फर्क नहीं करेगी। गांधी जी ने बार-बार यही बात हम लोगों को समझाई है।

मैं मानता हूं कि सरकार अपनी जिम्मेवारी महसूस करती है। लेकिन कुछ मौकों पर तेज रफ्तार की जरूरत होती है।

अब बारिश नजदीक आ गई है। इस समय उनको फौरन कुछ-न-कुछ जमीन मिल जानी चाहिए। अगर वैसा न हुआ तो उनका क्या हाल होगा ? संत तुकाराम ने अपने एक भजन में किसान की मनोदशा का वर्णन किया है। वह लिखता है कि जब बीज बोने का समय आ जाता है तो यदि घर में कोई मनुष्य मर गया है तो भी किसान उसकी लाश को ढांककर खेत बोने के लिए चला जाता है। किसान के मन की तीव्रता तुकाराम ने इसमें बताई है। वही हाल मेवों का है। वे आसमान में बादल देखते हैं तो उन्हें फौरन अपने खेत याद आते हैं। जमीन जल्दी न मिली तो कैसे गुजारा होगा, इसकी चिंता उनको लगी है। उनकी वह चिता अगर हमें प्रभावित नहीं करती है तो हम इस बड़े देश में रहने के लायक नहीं हैं। बड़े देश में रहने वालों के दिल भी बड़े होने चाहिए। देश बड़ा और दिल छोटे यह बात जमती नहीं है। दूसरों की हालत उन्हींकी निगाह से सोचनी चाहिए। इसीको गीता ने आत्मौपम्य कहा है। हम अगर उनकी हालत में होते तो हमें कैसा लगता ? इस तरह सोचकर जो जवाब मिलेगा, वैसा उनसे हमें व्यवहार करना चाहिए। दूसरों से हम जैसा बर्ताव चाहते हैं, वैसा बर्ताव हमें दूसरों के साथ करना चाहिए। ऐसी आत्मौपम्य दृष्टि हम रखेंगे, तभी बड़े देश को कायम रख सकेंगे।

राजघाट, दिल्ली
२५-६-४८

: ३४ :

हम सब हरिजन बन जायं

आज गांधीजी का पांचवां मासिक दिन है । आज मैंने उनके प्यारे हरिजनों के बारे में कुछ कहने का सोचा है । आप जानते हैं कि पश्चिम पंजाब से पूर्व पंजाब में लाखों शरणार्थी आए हैं, जिनमें हरिजन भी बहुत हैं । उनकी मांग थी कि उनको भी यहां खेती के लिए जमीन दी जाय । उसका जिक्र मैंने एक दफा यहां प्रार्थना में किया था । पूर्व पंजाब सरकार की इस संबंध में कुछ मुश्किलें थीं । उन्होंने शरणार्थियों को बसाने का एक तरीका तय किया था, जिसके अनुसार जिन लोगों की पाकिस्तान में जमीनें थीं उन्हींको यहां जमीन दी जा सकती थी । वहां जितनी थी उतनी तो नहीं दे सकते थे, लेकिन उसीके अनुपात से देना तय किया था । उसके अनुसार चूंकि पाकिस्तान में हरिजनों की जमीन नहीं थी, यहां भी उनको जमीन नहीं मिल सकती थी । इसपर हरिजनों का कहना था कि वहां तो हम गुलाम थे, अब क्या यहां भी हमें गुलाम ही रक्खा जायगा ? हमें जमीन जरूर मिलनी चाहिए । आखिर सरकार ने यह निश्चय किया है कि जो जमीन उसके पास बचेगी उसमें से कुछ हरिजनों को भी दी जायगी । इस तरह कोई २-३ लाख एकड़ जमीन उनको मिल जायगी । इस कार्य के लिए मैं पूर्व पंजाब सरकार को धन्यवाद देता हूं । अभी तो वह जमीन एक साल के लिए ही मिलेगी ।

क्योंकि वहां किसी को भी इस समय स्थायी तौर से जमीन नहीं दी जा रही है। एक साल के बाद फिर देखा जायगा। इसके अलावा पूर्व पंजाब सरकार ने यह भी जाहिर किया है कि हरिजनों का दर्जा किसानों का घोषित किया जायगा।

यह सब अच्छा है। लेकिन मुझे तो दुःख इस बात का है कि अभी भी हरिजन हमसे अलग अवशिष्ट हैं। पंद्रह महीनों के पहले जब अंग्रेजों ने जाहिर किया कि हम जून १९४८ के अंदर हिंदुस्तान छोड़कर चले जायंगे तब मैंने कहा था कि 'हम स्वराज्य में प्रवेश करेंगे उससे पहले अगर अस्पृश्यता को यहां से निकाल दें तो कितना अच्छा होगा।' लेकिन दुःख की बात है कि अंग्रेज गए, स्वराज्य मिला, और अब भी छुआछूत नहीं गई। वैसे विधान परिषद् ने जाहिर कर दिया है कि हम अस्पृश्यता को नहीं मानेंगे। लेकिन जो सामाजिक सवाल है उसके लिए सारे सामाजिक जीवन और आचरण में परिवर्तन होने की जरूरत होती है। मद्रास में—जहां अधिक-से-अधिक कट्टरता थी—सारे मंदिर हरिजनों के लिए खुल गये हैं। लेकिन मैं देखता हूं कि उत्तर हिंदुस्तान में मंदिर नहीं खुले हैं, और न कोई ऐसी हलचल ही चली है।

हरिजनों को किसानों का दर्जा दिया उतने से काम पूरा नहीं होता है। हरिजन जिन कामों को करते हैं उन कामों को भी हमें ऊंचा उठाना चाहिए। इसी दृष्टि से वर्धा में हमारे यहां चमड़े के काम में कार्यकर्ता लग गए हैं, जिनमें कुछ ब्राह्मण भी हैं। वहां कुछ कार्यकर्ता मेहतरों का भी काम करते हैं। ये नीच काम नहीं हैं, बल्कि समाज की सेवा के उत्तम काम

हैं। नीच काम है झूठ बोलना, काला बाजार करना, लोगों को ठगना; जो बहुत सारे ऊंचे कहलाये जाने वाले लोग करते हैं। वास्तव में चमार, मेहतर आदि लोग ऐसी सेवा करते हैं कि जिसके बगैर समाज का जीवन असंभव है। यह जरूर है कि आज जिस ढंग से ये काम किये जा रहे हैं उसमें मलिनता है। स्वच्छतापूर्वक वे कैसे किये जा सकते हैं यह बतलाना हमारा काम है। उन कामों को शुद्ध करके हम वह बता सकते हैं। हरिजन नाम के कोई अलग लोग न रह करं, हम सारे ही हरिजन यानी भगवान के जन बनें। वह स्वामी हम सेवक, वह पिता हम सब उनके पुत्र, इस तरह हम एक हो जायं। हिन्दुओं को बलवान और संगठित बनाने की बात लोग करते हैं, लेकिन वे यह नहीं समझते हैं कि हिंदू-समाज को अत्यन्त कमजोर अगर किसी चीज ने किया है तो, वह इस छुआछूत के भेद ने किया है। इस भेद को मिटाने में हम लोगों को लग जाना चाहिए। दूसरों का द्वेष करके कोई समाज मजबूत नहीं होता है। अस्पृश्यता को मिटायेंगे और सब हरिजन बनेंगे तभी हम स्वराज्य के लायक बनेंगे और उसको टिका सकेंगे।

दिल्ली, राजघाट
३०–६–४८

: ३५ :

सामूहिक प्रार्थना का संकल्प

गरमी की तकलीफ के बाद जब बारिश होती है तो ठंडक मालूम होती है, ठीक यही परिणाम प्रार्थना का आत्मा पर होता है। बारिश का परिणाम शरीर पर और उसके द्वारा मन पर होता है तो प्रार्थना का परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है।

आज हम बारिश के बावजूद चंद भाई भगवान की प्रार्थना के लिए यहां इकट्ठे हुए हैं। ईश्वर की प्रार्थना के लिए हम सबके हृदय एकत्र हो गये हैं। इस तरह जो प्रार्थना में शरीक होते हैं वे सच्चे अर्थ में भाई-भाई और भाई-बहन बन जाते हैं। एक माता के लड़के जो भाई-भाई कहलाते हैं उनमें भी विचार भेद हो सकता है। लेकिन परमात्मा की प्रार्थना के लिए एकत्र होने वाले, हृदय से एक हो जाते हैं।

आज तो थोड़ी बारिश हुई। लेकिन संभव है कि किसी दूसरे शुक्रवार को बहुत बारिश हो, तब भी बीमार आदि को छोड़ कर, हममें से जो लोग दिल्ली में ही हों, और यहां आ सकते हों, उनको प्रार्थना के लिए जरूर आना चाहिए। वैसे आज तो हम बैठ कर भी प्रार्थना कर सकते थे। लेकिन आगे कभी अधिक बारिश के कारण बैठकर प्रार्थना न हो सकी तो क्या होगा, उसका खयाल करके आज तालीम के तौर पर खड़े होकर ही प्रार्थना करने का मैंने विचार किया है।

भगवान तो सर्वत्र है, हम जहां होंगे वहीं वह मौजूद है, हमारे हृदय में विराजमान है। उसकी प्रार्थना तो हर जगह, हर समय, और हर काम में हम कर सकते हैं, और करनी चाहिए। फिर भी जब हम लोगों ने सामुदायिक प्रार्थना की एक जगह, और एक दिन निश्चित किया है तो उसको पूरा करने में हमारा संकल्प-बल बढ़ता है। ऐसा संकल्प-बल हमें हमारे सांसारिक, सामाजिक और पारमार्थिक जीवन में बहुत मदद देता है। आज हम देख रहे हैं कि इस मजमे में छोटे बच्चे भी हमारे साथ खड़े हैं, उनके दिल को क्या लगता होगा? इस घटना का असर उनके जीवन में किस तरह प्रकट होगा, कौन कह सकता है? हम भी भगवान के सामने बच्चे ही हैं। बच्चों के जैसी श्रद्धा रखकर, निर्दोष बनकर, ग्रहण-शील होकर भगवान की प्रार्थना में खड़े हो जायंगे तो हमारे सारे पाप धुल जायंगे। और एक ऐसी रूहानी ताकत पैदा होगी, जिससे जीवन में अपार आनंद और स्फूर्ति महसूस होगी।

राजघाट, दिल्ली

९–७-४८

: ३६ :

वानप्रस्थ

आठ महीने पहले हमारे यहां पौनार के एक भाई की वानप्रस्थाश्रम प्रवेश की एक विधि हुई थी। आज यह दूसरा

प्रसंग है। इन भाई ने वानप्रस्थाश्रम की प्रतिज्ञा आज ली है। यह युक्तप्रांत के रहने वाले हैं। उनके साथ उनकी पत्नी का भी पूरा सहकार है। वैसे तो कुछ वर्षों से वह इसकी कोशिश कर रहे हैं। मैं वर्षों से उनको जानता हूं। उनकी तीव्र इच्छा देखी इसलिए मैंने भी उनकी प्रतिज्ञा का साक्षी होना मंजूर कर लिया।

हमलोगों में वर्णाश्रम नाम का एक शब्द रूढ़ है। शब्द तो वह एक है, लेकिन उसमें चीजें दो हैं, वर्ण और आश्रम दोनों बिल्कुल अलग-अलग चीजें हैं। वर्ण का संबंध समाज-व्यवस्था से है। समाज-व्यवस्था बदल भी सकती है। जिस जमाने में जो व्यवस्था हो उसके अनुसार हर एक अपना कर्तव्य करे। यही वर्ण-व्यवस्था का तात्पर्य है। जहां किसी समाज में ऐसी कोई व्यवस्था है ही नहीं, वह समाज खतरे में है। लेकिन एक ही तरह की व्यवस्था हर समय रहे ऐसा आग्रह नहीं चल सकता।

आश्रम-व्यवस्था का समाज से उतना संबंध नहीं है जितना व्यक्ति के निजी जीवन से। इसलिए वह हर समय और हर समाज के लिए लागू होता है। उसमें कुछ बाह्य परिवर्तन हो सकता है। लेकिन उसका मूल-स्वरूप कायम रहेगा। हिंदू-धर्म ने जैसी बाक़ायदा आश्रम व्यवस्था की है वैसी दूसरे धर्मों ने नहीं की है। लेकिन उसके पीछे जो विचार हैं वे तो सब धर्मों में मौजूद हैं। हिंदू-धर्म में यह व्यवस्था तो आज टूट गई है। विवाह विधि तो सभी करते हैं, पर वानप्रस्थ आश्रम की भी एक विधि होती है और वह की जानी चाहिए, आम

लोग यह जानते भी नहीं । उपाध्याय आदि वर्ण के लोग जिनपर यह जिम्मेदारी है कि लोगों को अपने धार्मिक कर्तव्य का भान करावें, स्वयं इस बारे में अनजान हैं । हिंदू-समाज की आज ऐसी दुर्दशा हो गई है ।

आश्रम-व्यवस्था के पीछे यह विचार है कि मनुष्य-जीवन का उद्देश्य विषय-भोग नहीं, विश्व-सेवा है, संयम साधकर ईश्वर का साक्षात्कार करना है । अगर यह ठीक है तो जो विषय-वासना उत्पन्न होती है उसे योग्य रूप देना चाहिए, उसका नियमन करना चाहिए और जल्द से जल्द उससे मुक्त होने का रास्ता ढूंढ़ना चाहिए । इसी प्रयत्न का नाम आश्रम-व्यवस्था है ।

आश्रम-व्यवस्था के पुनः स्थापन की हम वर्षों से कोशिश करते आए हैं । आज समाज में वैयक्तिक ब्रह्मचर्याश्रम तो है नहीं । अविवाहित जीवन ही उस नाम से पहचाना जाता है । इतना ही नाम मात्र का गृहस्थाश्रम भी है । अपनी संस्था में दोनों की शुद्धि का प्रयत्न हमने किया है । वानप्रस्थ-आश्रम की शुद्धि का भी हमने प्रयत्न किया है । विधि के हिसाब से तो आज का यह प्रसंग दूसरा ही है, परन्तु वानप्रस्थ को स्वीकार और तदनुसार आचरण तो आश्रम में बहुतों ने किया है । गांधीजी ने अपने जीवन से इसका आदर्श दिखाया है । उन्होंने हमें सिखाया कि गृहस्थाश्रम में भी विषय-वासना को दूर रखने की कोशिश होनी चाहिए । मैंने भी जब-जब प्रसंग आया यथाशक्ति इस विचार का प्रचार किया है । विधि-पूर्वक वानप्रस्थ लेने का प्रचार तो शायद मैंने ही किया है, ऐसा

कहा जा सकता है। मैं उसकी जिम्मेदारी भी महसूस करता हूं। विधिवत् वानप्रस्थ हो जाने के बाद अगर अपनी प्रतिज्ञा को कोई तोड़ेगा तो वह नरक का रास्ता लेगा। यह एक बड़ा खतरा तो है, लेकिन कोई भी बड़ा काम बिना खतरा उठाए तो होता नहीं। इसलिए जब सब सोच समझ कर कोई तैयार होता है तो उसको बल देने के लिए मैं भी तैयार रहता हूं।

संन्यासाश्रम की स्थापना का यत्न हमने नहीं किया। संन्यास आत्मा की स्वाभाविक स्थिति है, इसी लिए वह मानसिक है। संन्यास का हमारा आदर्श तो वही है जो गीता ने हमें सिखाया है। उसको हम पहुंच नहीं पाए हैं, लेकिन कोशिश जरूर है। संन्यासी के बारे में आज कल्पना हो गई है कि उसे सेवाकार्य भी छोड़ देना चाहिए। यह ख्याल गलत है। संन्यासी के लिए सेवा-कार्य छोड़ने की जरूरत नहीं है, अहंकार और आसक्ति छोड़ने की आवश्यकता है।

वानप्रस्थ का संकल्प ऐसे किसी उत्सव द्वारा जल्दी किया जाय, यह भी जरूरी नहीं है। परमात्मा को साक्षी रख कर ली गई प्रतिज्ञा ही काफी है। लेकिन मनुष्य चाहता है कि उसे साथियों की संकल्प शक्ति का भी सहारा मिले। इसके अलावा चूंकि विवाह-संस्कार सार्वजनिक होता है, उसके संस्कार भी चित्तपर रहते हैं, इसलिए उन्हें दूर करने की दृष्टि से भी वानप्रस्थ का विधिवत् स्वीकार करना आवश्यक समझा गया है।

यह विषय ऐसा है कि हर एक से उसका संबंध है, फिर चाहे वह विद्वान् हो या अनपढ़, अमीर हो या गरीब, पुरुष हो या स्त्री। यह आत्मशुद्धि का विषय है। जो कोई

आत्म-कल्याण के बारे में सोचेगा और समझेगा और जिस पर भगवान की कृपा होगी वही इस पर अमल कर सकता है। देहातों के जो भाई-बहन यहां उपस्थित हैं वे यह न समझें कि यह विषय केवल विद्वानों के लिए ही है। परमात्मा ने सबको अपना प्रेम दिया है, सबको वह अपनी ओर खींच रहा है। जो उस परमपिता पर प्रेम करता है, उससे बिछुड़ने का जिसे दु:ख है, फिर से उसके पास पहुंचने की जिसकी प्रेरणा है, उसका दर्शन करने तथा उसका कृपापात्र बनने की जिसे इच्छा है,वह हर कोई इस पर अमल कर सकता है। इसके लिए पढ़ाई नहीं, दिल की सचाई की जरूरत है। हम सबने देखा है कि हमारे यहां हर जाति में ऐसे संत और भक्त पैदा हुए हैं जो पढ़ना लिखना नहीं जानते थे, लेकिन जिन्होंने आत्म-दर्शन किया था। आगे भी ऐसे लोग यहां होते रहेंगे।

आज का यह छोटा-सा उत्सव मेरी दृष्टि में बहुत बड़ा है। कुछ समय तक गृहस्थाश्रम का अनुभव लेने के बाद वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने के विचार का प्रचार होगा तो हिंदूधर्म की शुद्धि होगी और हिंदुस्तान में एक जमाने में जो तेज था वह पुन: प्रकट होगा। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि जिन्होंने प्रतिज्ञा की है उन्हें वह पूरा बल दे और दूसरे भाई-बहनों को भी इसी तरह की स्फूर्ति दे।

पवनार

२०-७-४८

: ३७ :

सर्वत्र ईश्वर-दर्शन

लोका जानि न भूलो भाई,
खालिक खलक, खलक में खालिक सब घट रह्या समाई – ध्रु० –
अल्ला एक नूर उपजाया, ताकी कैसी निंदा,
ताहि नूर से सब जग कीना, कौन भलो कौन मंदा।
जा साईं की गति नहिं जानी, गुरु गुड़ दिया मीठा,
कह कबीर में पूरा पाया, सब घट साहिब दीठा।

अभी हमने यह जो भजन गाया है उसमें कबीर साहब ने कहा है कि हमारे गुरु ने हमें बड़ा मीठा गुड़ दिया है। वह गुड़ क्या है ? गुड़ है, यह दृष्टि, कि दुनिया में जितने भी लोग हैं उनमें हम ईश्वर का ही प्रकाश देखें। कबीर साहब कहते हैं कि वह गुड़ मैंने चखा है, और मुझे अनुभव हुआ है कि सारी की सारी दुनिया ईश्वर से भरी हुई है। "कहे कबीर मैं पूरा पाया;" पूरा वह पाता है जो दुनिया की सभी अच्छी बुरी समझी जाने वाली चीजों में भगवान को देख सकता है।

हमारे गुरु ने भी हमें यही कहा था, और इसी साधना में उन्हें, प्रार्थना भूमि पर ही अपने शरीर का त्याग करना पड़ा। उन्होंने हमें यही बताया कि जितने भी इन्सान दुनिया में हैं उनके साथ हम समान व्यवहार करें, किसी तरह का फरक न करें। वह किस मजहब का है, किस सूबे का है, या कौन भाषा बोलता है यह खयाल न करें। सत्य क्या है देखें, और सत्य का ही

पक्ष लें। यह गुड़ हमारे गुरु ने खुद चखा, हमें भी चखाया, और चखते चखते ही वे इस दुनिया से गए और नसीहत दे गए कि अगर तुम इस वस्तु को पकड़े रखेगो तो तुम्हारा भला होगा। इसकी साधना में अगर देह को भी छोड़ना पड़े तो छोड़ दो। इस गुड़ को छोड़ कर जिंदा रहने के कितने भी वरदान मिले तो उन्हें त्याग दो।

हम सब उनकी इस शिक्षा को अपनावें और सबके साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा खुद अपने साथ करते हैं।

राजघाट, दिल्ली
बापू की छमाही के दिन
३०-९-४८

: ३८ :

महंगाई का असली हल

आप सब लोग जानते हैं कि आजकल वस्तुओं के भाव बहुत बढ़ गयें हैं। इसलिए लोगों को काफी परेशानी है। खासकर जब कपड़े और अनाज के भाव बढ़ जाते हैं तो गरीबों को बहुत तकलीफ होती है। सरकार इस बारे में सोच रही है और कुछ उपाय भी कर रही है।

जब कपड़े का कंट्रोल उठाया गया तब सरकार और जनता ने मिलवालों पर विश्वास रखा था। लेकिन दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मिलवालों ने उस विश्वास को

भंग कर दिया है। वे, इसी तरह चालीस साल से मुल्क को धोखा दे रहे हैं। सन् १९०६ में, जब देश में स्वदेशी के प्रचार और विदेशी के बहिष्कार का आंदोलन चला था तब भी मिलवालों ने देश की ओर ध्यान नहीं दिया, खूब पैसे कमाए, बाद में भी जब-जब मौका मिला, उन्होंने देश को बेचकर बराबर अपना ही स्वार्थ साधा है। सरकार इसके लिए जो उपाय कर रही है वह कहांतक कारगर होगा, भगवान ही जानें। क्योंकि इस तरह के उपायों के कारगर होने के लिए चरित्र-शुद्धि की जरूरत होती है। चरित्र-शुद्धि के बिना ऐसे काम कम होते हैं।

लेकिन मेरे विचार में इस समस्या का असली हल तो खद्दर ही है। मिलों के काम में जो दिक्क़तें हैं वे खद्दर में नहीं हैं। हिंदुस्तान में प्रायः छोटे रेशेवाली कपास होती है। मिलों में उसका उपयोग कम होता है। इसलिए उसे बाहर के देशों में बेचना पड़ता है और उसके बदले में बाहर से लंबे रेशेवाली कपास खरीदनी पड़ती है यह बहुत महंगी मिलती है और कभी नहीं भी मिलती। ट्रांसपोर्ट का भी सवाल है। फिर बीच में कितने ही एजंटों और उपएजंटों का हाथ रहता है। खादी हमें इन तमाम मुश्किलों से बचा लेती है अगर हमारी सरकार चरखे को उत्तेजन और संरक्षण देती है और हम उसको अपना लेते हैं तो हर देहात में जहां कपास होती है, खादी बन सकती है। उसमें न तो ट्रांसपोर्ट का सवाल रहता है और न एजंटों का। जिस कपास से मिलें मुश्किल से दस-बारह नंबर का सूत कातती हैं चर्खा

उसीसे उनसे दुगना महीन सूत कात लेगा। इसलिए चरखे के काम में यहांकी कपास भी आ जाती है। इस तरह से सोचें तो ध्यान में आयगा कि कपड़े का सवाल हल करने का सबसे सरल उपाय चर्खा ही है, दूसरा उपाय यह है कि सारी मिलें, जैसा कि यथासंभव करना भी चाहिए, देश की मिल्कियत कर दें। लेकिन आज की हालत में उससे भी पूरा हल नहीं निकलनेवाला है। गरीबों के स्वराज के खयाल से तो चरखे के सिवा दूसरी गति ही नहीं है। इस बारे में एक दफा मैं यहां बोल चुका हूं। आज फिर उसे दोहराना नहीं चाहता।

आज तो मुझे एक दूसरी ही बात करनी है। वह है अनाज के बारे में। अनाज पर कंट्रोल था तो कालाबाजार होता था अब कंट्रोल उठा लिया तो दाम बढ़ गए। मेरी राय में इससे मुक्त होने का एक ही रास्ता हो सकता है। अगर सरकार पैसे के बजाय अनाज के रूप में ही लगान वसूल करे तो यह मुश्किल हल हो सकती है। सरकार के पास अगर अच्छे अनाज का एक संग्रह रहा तो आम बाजार भाव उससे अनायास ही नियंत्रित हो जायंगे। अनाज के रूप में लगान चुकाने से वैसे तो किसानों को भी सहूलियत ही होगी। किंतु सरकार को उससे बहुत सहूलियत होगी। आज तो सरकार पुराने सेटलमेंट के आधार पर लगान वसूल करती है। अगर पंद्रह साल पहले सरकार किसी किसान से दस रुपए लेती थी तो आज भी उतने ही लेती है। लेकिन आज के दस रुपए उस जमाने के तीन रुपए की कीमत रखते हैं। इसीका नतीजा है कि आज की सरकार दरिद्र बन गई है। फिर यह भी

सोचने की बात है कि पैसे में 'सेटलमेंट' हो ही कैसे सकता है ? 'सेटलमेंट' का अर्थ होता है पक्की बात। पैसे की कीमत रोज बदलती रहती है। वह (पैसा) पक्की बात क्या कर सकता है। वह तो लफंगा है। जो आज एक बात कहता है, कल दूसरी कहता है, और परसों तीसरी। उसीको हम लफंगा कहते हैं न ? वही पैसे की हालत है। उसी (पैसे) को हमने अपना कारोबारी बना लिया है, इसीसे हमारी सरकार घाटे में आ गई है। और, लोग भी तंग हो रहे हैं। पैसे की असली कीमत तो कोई है ही नहीं। इसलिए इसकी कीमत चढ़ा और उतरा करती है। अनाज की कीमत न चढ़ती है न उतरती है। उसकी पोषकशक्ति में ही कमी-बेशी हो तो दूसरी बात है। लेकिन वैसा कम होता है। यह जरूर है कि इसमें सर-कार को अपने कोठार व अपनी दूकानें रखनी पड़ेंगी। सर-कार को हर हालत में ऐसे कारोबार करने ही पड़ेंगे। और वह कर भी सकती है। इस व्यवस्था के अनुकरण से, लगान के साथ-साथ, देहातों में मजदूरी भी अनाज में ही जाने लगेगी। इस सबका परिणाम यह होगा कि भावों में आज जैसा चढ़ाव उतार होता है वैसा नहीं होगा, कम होगा। और जो होगा भी तो उसका असर बहुतों पर नहीं होगा।

राजघाट, दिल्ली
६-८-४८

: ३९ :

शहीदों की स्मृति

जब विद्यार्थियों ने मुझे शहीद-दिवस मनाने के लिए यहां बुलाया तो मैंने सहज ही आना कबूल कर लिया। यही दिन था जब कि हिंदुस्तान में स्वराज्य की आखिरी लड़ाई शुरू हुई थी, और हिंदुस्तान भर में लोग जेलों में भेजे गए थे। फिर उसके बाद जो-जो घटनाएं हुईं वह आप सब जानते हैं।

उस समय अनेक लोगों ने हर तरह की मुसीबतें सहन कीं। उनमें कितने ही मारे भी गए। उन्हीं शहीदों की स्मृति में आज हम यहां इकट्ठे हुए हैं॥

जिन शहीदों का हम स्मरण करते हैं उन्हें इससे कोई सद्गति नहीं मिलनेवाली है। वे तो अपनी वृत्ति से पुण्यगति पा चुके हैं। हम तो अपने लाभ के लिए उनका स्मरण करते हैं। जिस देश में वीर पुरुषों का स्मरण मिट गया उस देश के लिए आगे कोई आशा नहीं। इसलिए हर देश में अपने वीर पुत्रों का आदर हुआ करता है। हिंदुस्तान में तो प्राचीन काल से यह होता आ रहा है। हमारे यहां श्राद्ध की प्रथा बहुत प्राचीन है। श्राद्ध का अर्थ ही श्रद्धा से स्मरण करना है। हमें इससे महान् लाभ हुआ है और उसी श्रद्धा से हम आज का यह शहीद-दिन मना रहे हैं।

इन शहीदों के नाम तो शायद दुनिया नहीं जानेगी। वास्तव में यह महान् सौभाग्य की बात होती है कि हम दुनिया

में अच्छा काम करें और हमारा नाम कोई न जाने। जो नेक काम करता है और नाम की इच्छा नहीं रखता उसकी चित्त-शुद्धि होती है और उसका काम सहज ही परमात्मा को अर्पण हो जाता है। मैं तो मानता हूं कि सर्वोत्तम पुरुष वे थे जिन्होंने काम तो अमली किए हैं लेकिन इतिहास को उनका पता भी नहीं है। वास्तव में उन्होंने तो बुनियाद का काम किया है। जो पत्थर बुनियाद में लगाए जाते हैं वे किसी को दिखाई नहीं देते। उनके काम की नींव पर दूसरों के काम की इमारत खड़ी होती है। इनका नाम होता है। इतिहास इनका जय-जयकार करता है।

वर्ड्सवर्थ ने अपने स्मारक के बारे में एक जगह लिख रखा है कि जिस टेकरी पर अक्सर मैं घूमने जाया करता हूं वहां बहुत से पत्थर पड़े हैं, जिनमें से कुछ तो कारीगर लोग ले गए हैं, कुछ ऐसे हैं जिनका किसीके दिल में आकर्षण नहीं हुआ है। मेरी इच्छा है कि उनमें से एक पत्थर मेरे स्मारक के लिए लिया जाय और उस पर लिखा जाय, 'आम में से एक'। हमारे शहीद भाई इसी तरह 'आममें से एक' हैं, जिनके नाम इन्सानों के पास नहीं परमात्मा के पास रहनेवाले हैं।

इस विषय में एक बात साफ होने की जरूरत मैं देख रहा हूं। आज हम शहीद उसे ही कहते हैं जिसकी किसी अच्छे काम के लिए हत्या की जाती है। लेकिन शहीद के असली मानी यह नहीं है। शहीद तो वह है जिसकी जिंदगी किसी सद्विचार के लिए शहादत देती है; जो किसी सद्विचार पर अमल करने में अपनी सारी जिंदगी दे देता है।

जिस अर्थ में दुनिया 'शहीद' शब्द को पहचानती है उस अर्थ में दुनिया के लिए गांधीजी शहीद हो गए हैं। लेकिन मान लीजिए कि गांधीजी इस तरह मारे न जाकर अपना परोपकारमय जीवन बिताते हुए, सहज-मृत्यु ही पाते तो क्या वह शहीद न रहते ? मेरी निगाह में वह तब भी शहीद होते। क्योंकि उनका सारा जीवन शहादत था। जो किसी अच्छे ध्येय के लिए अपना सारा जीवन समर्पण करता है वही शहीद है और ऐसे शहीद बनने की हम सबको इच्छा करनी चाहिए। हम ऐसी इच्छा नहीं कर सकते कि शहीद बनने के लिए हममें से हर एक किसी दूसरे के हाथ से मारा जाय, क्योंकि ऐसी इच्छा का अर्थ तो यह होगा कि दुनिया में बुरे लोगों का वर्ग भी कायम रहना चाहिए। लेकिन मान लीजिए कि दुनिया में सब लोग अच्छे हो जायं तो क्या शहादत मिट जाएगी ?

मैं इस विचार को और साफ किए देता हूं। मान लीजिए कि मैं गोली खाकर मर जाता हूं। लेकिन मेरे दिल में उसका आनंद नहीं है। शायद कुछ रंज भी है। तो देखने में तो यही हो जायगा कि मैं शहीद हो गया। किंतु ,वास्तविक अर्थ में मैं शहीद नहीं हुआ, कारण मेरी यह शहादत तो एक आकस्मिक घटना हो गई। शहादत आकस्मिक घटना नहीं है। जीवन भर किसी अच्छे विचार पर अमल करना और उसीके लिए मरना ही शहादत है। इस तरह की शहादत के वास्ते हम सबको कोशिश करनी चाहिए।

दिल्ली
९–८–४८

: ४० :

सत्वगुण बढ़ाओ

परसों पंद्रह तारीख आ रही है। हमारी आजादी को एक वर्ष होता है। उस दिन कुछ उत्सव भी मनाया जायगा। परंतु उक्त उत्सव का स्वरूप केवल खुशी मनाने का नहीं बल्कि आत्म-शोधन और चिंतन का होना चाहिए। अगर केवल खुशी मनाने की वृत्ति रही तो हम गाफिल रह जायंगे और आगे जो कुछ करना है उसके लिए तैयार नहीं हो सकेंगे। इसके लिए यह जरूरी है कि हम अपनी वृत्ति गंभीर रखें, और सोचें कि हमने आजादी कैसे खोई थी, कैसे हासिल की और इसके आगे क्या करने की आवश्यकता है।

चार सौ साल पहले जब अंग्रेज आए तो उन्होंने यहांकी जनता को गाढ़ निद्रा में देखकर आहिस्ता-आहिस्ता अपने पैर यहां जमा लिए। उनमें रजोगुण का जोर था और यहां के लोगों में तमोगुण का। उसका जो नतीजा होना था वही हुआ। नाना फड़नवीस ने करीब तीन साल तक अंग्रेजों का मुकाबला किया। पर उसने अपने मनमें समझ लिया था और लिख भी दिया था कि यहां टोपीवाले राज करेंगे। जब ऐसा ही हुआ तो हमारे नेतागण सोच में पड़ गए। उन्होंने देखा कि तमोगुणी जनता में रजोगुण जाग्रत किए बिना काम नहीं चलेगा। राजकीय नेताओं ने तो इस विचार पर अमल किया ही, धार्मिक नेताओं ने भी उनका साथ दिया। स्वामी

विवेकानंद ने तो एक जगह यहां तक कह डाला है कि हमारे लोगों को अब गीता से भी अधिक जरूरत खेलकूद की है। ऐसे वचनों का अक्षरार्थ नहीं भावार्थ लेना होता है। भाव उनका यही था कि रजोगुण जाग्रत किए बिना तमोगुणी जनता को एकदम से सत्त्वगुण की ओर ले जाना संभव नहीं है। बहुतों ने ऐसा ही सोचा और रजोगुण को उभार कर देश में काफी जोश और असंतोष पैदा किया गया। जब गांधीजी आए तो उन्होंने भी इसका जितना उपयोग हो सकता था किया। परंतु उन्होंने उसपर सात्विकता का पुट चढ़ाने की कोशिश की। इस सबका नतीजा ही यह स्वराज्य है।

लेकिन हम देखते हैं कि जहां स्वराज हासिल हुआ है वहां भेद भी हममें एकदम खूब बढ़ गए हैं। प्रांत-भेद, जाति-भेद और भाषा-भेद सभी बढ़ रहे हैं। भाषा के अनुसार प्रांतरचना का प्रश्न एक सरल और सादा-सा प्रश्न है। जनता की हित की दृष्टि से राज-कारोबार जनता की भाषामें चलना चाहिए यह तो एक सरल विचार है। लेकिन ऐसे सरल विचार पर सोचने में भी अभिमान द्वेष आदि प्रगट हो रहे हैं। यह सब क्यों होता है उस पर मैं सोचता रहा हूं। और सोचकर इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि हमने अभीतक जो रजोगुण बढ़ाया है, यह उसीका फल है। रजोगुण में जोश तो होता है पर उसमें फोड़ने की प्रवृत्ति होती है। वह एक के दो, दो के चार, और चार के आठ टुकड़े कर सकता है। आठ के चार, चार के दो, और दो का एक करना नहीं जानता। अंग्रेजों से लड़ने के सर्वसमान उद्देश के कारण रजोगुण की

फोड़ने की जो प्रवृत्ति दब गई थी वह स्वराज मिलते ही अब फिर प्रगट हो गई है। अब हमें इस बात पर खूब सोचना चाहिए कि क्या रजोगुण को बढ़ने देने में अब भी हमें कोई लाभ है? यूरप में रजोगुण बहुत बढ़ा हुआ है। इससे हम देखते हैं कि वहां एकता नहीं हो पाती। नतीजा यह होता है कि वहांके लोग नित आपस में लड़ते रहते हैं। वही नतीजा यहां आवेगा। मैं मानता हूं कि हमारे रजोगुण पर गांधीजी ने जो सात्विकता का पुट चढ़ाने की कोशिश की थी, उसकी आज पहले से भी अधिक और बहुत अधिक मात्रा में आवश्यकता है।

अगर मेरा यह विश्लेषण और निदान ठीक है तो हमारे आध्यात्मिक विचारकों, सामाजिक नेताओं तथा शिक्षण-शास्त्रियों का काम है कि वे जनता को इस दिशा में शिक्षण दें। और हमारा सार्वजनिक कार्य इस तरह चलाया जाय कि हम भेद में से अभेद की ओर, द्वेष में से प्रेम की ओर बढ़ सकें, हमारा विवेक जाग्रत हो, और रजोगुण सत्वगुण को जगह दे।

मुझे तो यही एक उपाय दीखता है। और मैं मानता हूं कि जब ऐसे आत्मशोधन के प्रसंग आयें तो इन सब बातों पर हमें गंभीरता से सोचना चाहिए और जो भी निर्णय हो उसके अनुसार अपने निजी और सामाजिक जीवन में उचित सुधार करना चाहिए।

राजघाट, दिल्ली
१३–८–४८

: ४१ :

स्वराज्य की सफलता

आज की सभा में बहिनें भी काफी तादाद में आई हैं यह देखकर मुझे आनंद होता है। महिलाएं सार्वजनिक कार्य में सहयोग देंगी, तब ही हमारे देश की उन्नति होगी। देवी अहिल्या बाई का उज्ज्वल उदाहरण आप सबके सामने है ही। शायद उसी का परिणाम आपकी यह उपस्थिति है।

आज की १५ तारीख हमारे लिए एक पवित्र दिन है। आज हमारा स्वराज्य शिशु ठीक एक साल का हो चुका है। इस बात का हम आनंद जरूर मना सकते हैं। लेकिन उसके साथ हमें बहुत कुछ सोचना भी चाहिए। अक्सर छोटे बालकों के संगोपन में काफी फिक्र रखने की जरूरत होती है। हिंदुस्तान में तो बहुत सारे बालक प्राथमिक अवस्था में ही मर जाते हैं। कारण, छोटे बच्चों की हिफाजत का ज्ञान हमारे माता-पिता को नहीं रहता। इसलिए अपने इस स्वराज्यरूपी बालक की हिफाजत हमें फिक्र से करनी होगी।

हम सब इस बात का अभिमान रख सकते हैं, कि हम तेंतीस करोड़ हैं, हमारी कई जातियां हैं, कई धर्म और कई भाषाएं हैं और कई तरह के रीति-रिवाज हैं। अपनी इस विविधता से हमें लाभ उठाना चाहिए। लेकिन विविधता में जो एकता छिपी हुई है उसे कभी गौण नहीं समझना चाहिए। हिंदुस्तान की आजादी की समस्या यानी सब लोगों को एक साथ रखने की समस्या है।

किंतु मुझे दुःख है कि आज चारों ओर से भेदभाव बढ़ते हुए दीख पड़ते हैं। हमारा कर्तव्य तो यह है कि भेदभाव बढ़ाए बगैर हम अपनी-अपनी विशेषताओं को देश के समर्पण कर दें।

हिंदुस्तान को सत्ता मिली है। इसका अर्थ यही है, कि गरीबों की सेवा के लिए आज तक हमें जो सुविधाएं नहीं थीं वे मिली हैं। जिस प्रकार भरत ने राम का राज्य समझ कर सेवक वृत्ति से राज का काम संभाला, उसी तरह से हमें समझना चाहिए कि यह राज गरीब जनता का है, और उसके नाम पर, उसके ट्रस्टी बन कर, हमें उसको चलाना है। स्वातंत्र्य-सूर्य के उदय के बाद गरीबों को ऐसा अनुभव होना चाहिए, कि हर कोई उनकी सेवा में लग रहा है। उन्हें दीखना चाहिए कि सुशिक्षित लोग, जो पहले उनके पास नहीं पहुंच सकते थे, अब उनकी सेवा में जुट गए हैं। केवल झंडा फहराने से गरीबों को स्वराज्य की अनुभूति नहीं होती। उन्हें तो स्वराज्य की हरारत महसूस होनी चाहिए।

सूर्यनारायण के उदय होने पर धनी, गरीब सबके घरों में प्रकाश पहुंच जाता है। यह नहीं होता, कि होलकर महाराज के घर में तो वह पहुंचे, और मेहतर के यहां नहीं। वह दोनों को समान सुख पहुंचाता है। ठीक इसी तरह स्वराज्य के बारे में भी होना चाहिए।

जनता के सामने हमने प्रतिज्ञा की थी, कि स्वराज्य आने पर हम आपके दुःख दूर करेंगे। अब स्वराज्य आ गया है। नदियां जिस तरह सब तरफ से दौड़ती हुई समुद्र में मिलती

हैं, उसी तरह हम सबको अपने भाइयों की सेवा के लिए दौड़ जाना चाहिए। यह तो तभी होगा, जब हम अपने सारे भेद भूल जायंगे, और हमारे लिए दुनिया में दो ही चीजें रहेंगी। एक गरीब जनता—स्वामी, जिसकी हमें सेवा करनी है, और दूसरे हम, उसके सेवक। तीसरी कोई चीज हमारे लिए होनी ही नहीं चाहिए।

इतने बड़े देश में विचार-भेद हो ही सकते हैं, और उनके अनुसार पक्ष-भेद भी। परंतु मैं पूछता हूं कि आप लोगों के विचारों में कुछ समान अंश भी है या नहीं ? अगर है तो समान कार्यक्रम बनाइए। और सब मिलकर देश की सेवा में लग जाइए। इस तरह काम करने से हमारे भेद कम होते-होते एक दिन मिट जायंगे। और अच्छी बातों का अपने आप प्रचार होने लगेगा। वर्ना अगर इसी तरह भेद कायम रखने की कोशिश की गई, तो लोग सत्ता के पीछे पड़ जायंगे। और स्वराज्य प्राप्त होने पर भी यह स्वराज्य का आनंद नहीं भोग सकेंगे।

एक बात और है। हम में से हर एक को खाने व पहिनने के लिए तो कुछ-न-कुछ चाहिए ही और हम जानते हैं कि हमारे देश में इसकी कमी है, तो जैसे कि उपनिषदों की आज्ञा है, हमें पैदायश का व्रत लेना चाहिए। वकील, डाक्टर, प्रोफेसर, व्यापारी, न्यायाधीश आदि हम सब रोज कुछ न कुछ निर्माण-कार्य करेंगे तो हमारी गरीबी दूर हो सकेगी। इसलिए गांधी जी ने सबको सूत कातने की सलाह दी थी। सूत कातना तो इसलिए सुझाया कि कपड़े की जरूरत हर एक को होती है,

और वह ऐसा आसान काम है कि सब कर सकते हैं। मतलब इसका यही है, कि हर एक को निर्माण-कार्य करना है। कर्ममयी उपासना जो गीता ने हमें सिखाई थी, रूढ़ करनी है। लेकिन हम उसका मूल्य नहीं समझ सके हैं।

मुझे तो इस विचार से अत्यंत स्फूर्ति मिलती है। हिंदुस्तान के विचारकों ने इसपर पूरे तौर से सोचा नहीं था। भक्ति-मार्गी भजन करते हैं। ध्यानयोगी ध्यान में रमते हैं। ज्ञानी चिंतन में मस्त है। पर ये सब ऐसा नहीं सोचते कि चूंकि हमें रोज कुछ-न-कुछ खाने को लगता ही है, तो कुछ पैदायश का काम भी कर लें, ताकि एक ही कर्म से चित्तशुद्धि भी हो, भक्ति भी सधे, और श्रमिकों का बोझ भी कुछ कम हो।

हमारे यहां बीच के जमाने में श्रम की प्रतिष्ठा नहीं रही। कारीगरों को हमने नीच जाति का और अछूत समझा। मनु ने कहा था 'सदा शुचिः कारुहस्ता' यानी काम करनेवाले के हाथ निरंतर पवित्र होते हैं। किंतु हम यह चीज़ भूल गए। हर कोई काम छोड़ने लगा। संन्यासी ने काम छोड़ा, विद्यार्थियों ने छोड़ा, भक्तों ने भी छोड़ा। अब इस तरह जो काम करनेवाले बच गए उनका बोझ बढ़ गया, और उनकी, तथा उनके काम की प्रतिष्ठा भी जाती रही। इसलिए अगर हमें स्वराज्य को संपन्न बनाना है तो श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ानी होगी। अर्थात् श्रम का मूल्य भी बढ़ाना होगा। बढ़ई, प्रोफेसर और न्यायाधीश के वेतन के भेद मिटाने होंगे। जिस तरह सूर्य सबको समान प्रकाश देता है, चंद्र सबको समान रूप से शीतलता पहुंचाता है और पृथ्वी, हवा, पानी सबके लिए

समान है वैसे ही आजीविका के साधन सबको समान रूप से मिलने चाहिए।

लोगों को डर लगता है, और पूछते हैं, कि सब समान हो जायंगे तो हम जो ऊंचे काम करनेवाले हैं उनकी प्रतिष्ठा कैसे रहेगी? मैं पूछता हूं, कि आपने भगवान कृष्ण से तो अधिक ऊंचा काम नहीं किया है? कृष्ण से बढ़कर तो कोई तत्त्वज्ञान हमें नहीं दिया है। वह कृष्ण क्या करता था? ग्वालों के बीच काम करता था, गौवें चराता था, घोड़ों के खरहरा करता था। धर्मराज के यहां यज्ञ में उसने जूठन उठाने का काम अपने लिए मांगा था। हिंदुस्तान का किसान गीता भी नहीं जानता है, परंतु आज पांच हजार वर्ष हुए तब से वह गोपालकृष्ण की जय बराबर करता आ रहा है। यह कैसे बना? क्योंकि उन्होंने देखा कि गोपाल कृष्ण ने तत्त्वज्ञान भी दिया, राज भी किया, और मजदूरी का काम भी किया।

आज १५ अगस्त का दिन है। आपसे मैं प्रार्थना करता हूं कि आज आप निश्चय कीजिए कि बिना कुछ निर्माण का काम किए खाएंगे नहीं। ऐसा करेंगे तो आप देखेंगे कि भारत की धरती पर स्वर्ग उतर आयगा, और स्वराज्य समृद्ध होगा।

इंदौर
१५ अगस्त १९४८

: ४२ :

ग्राम-सेवा का महत्त्व

मुझे जितना याद है, इस तरह के उद्घाटन के लिए मैं बहुत जगह नहीं गया हूं। ऐसे कामों में मुझे अक्सर कुछ शंका भी रहा करती है। एक जगह मुझे बुलाया गया था, वहां काम खत्म करना था। मुझे वहां पूर्ण शांति रही इसलिए कि एक काम खत्म कर रहा हूं और इससे अब कोई नुकसान नहीं होनेवाला है। हमारे पूर्वजों ने हमें एक अच्छी नसीहत दे रखी है कि बुद्धिमान मनुष्य काम शुरू ही न करे। आरंभ न करना प्रथम बुद्धिमत्ता का लक्षण है। फिर भी अगर हम आरंभ कर देते हैं तो कम-से-कम दूसरे दर्जे की बुद्धिमत्ता तो होनी ही चाहिए कि जो काम शुरू किया वह उत्तमता से संपन्न हो। जब मैं किसी कार्य का उद्घाटन करने जाने की सोचता हूं तो मुझे यही फिक्र रहती है कि उसका निभाव कैसे होगा और वह कैसे संपन्न होगा। यदि इसकी फिक्र नहीं रखनी है तो उद्घाटन के लिए किसीके मनहूस हाथों का उपयोग होना चाहिए जिससे वह काम जल्द-से-जल्द खत्म हो और निपटारा हो जाय। लेकिन अगर एक ऐसी जिम्मेदारी उठाई गई है कि काम खड़ा करें तो जो उद्घाटन करनेवाले होते हैं उनपर भी उसकी जिम्मेदारी आती है। इसलिए अक्सर मैं ऐसे कामों में नहीं जाता। लेकिन फिर भी मैंने यहां आना कबूल किया। एक तो मैं अब कुछ बाहर घूमने

लगा हूं। आप लोगों ने बुलाया तो मैं उसको टाल नहीं सका। दूसरी बात यह थी कि जो लोग इस काम को उठा रहे हैं उनसे मेरा अच्छा परिचय था। मैं मानता था और मानता हूं कि जितना काम वे आरंभ कर रहे हैं उसको संपूर्ण करके ही छोड़ेंगे, बीच में नहीं छोड़ेंगे। इसके अलावा एक और भी कारण यह है कि मैं भी चाहता हूं कि इस तरह के काम जगह-जगह पर हों। इन सब कारणों से मैं यहां आया हूं। अब यहां कैसे लड़के आए हैं और उनका क्या कार्यक्रम शुरू हुआ है इत्यादि बातों को तो मैं नहीं जानता हूं।

मुझे इस काम का कुछ अनुभव है, और उसका लाभ आपको देना चाहता हूं। अक्सर हमारी पुरानी सरकार जैसे शिमला में रह कर राज्य करती थी वैसे ही हम, बहुत सारे कार्यकर्ता देहातों का काम दूसरे लोगों से कराना चाहते हैं। कुछ लोग मार्गदर्शक रहेंगे और काम करनेवाले दूसरे होंगे। इस तरह के प्रयोगों में मुझे श्रद्धा नहीं है। हमें खुद इस काम को हाथ में लेना चाहिए। दूसरों के हाथों से काम कराया तो वह पूरा होनेवाला नहीं है। हिंदुस्तान के देहातों की हालत बहुत बिगड़ी हुई है। एक साल के स्वराज्य के बाद भी उसमें कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। देहातों में जाने के लिए अब भी लोग तैयार नहीं हैं। देहातों में उनको सहूलियत नहीं मिलती है। इसलिए देहातों के विषय में वह डरे-से हैं। जो लोग इस काम को चाहते हैं वे खुद देहात में जायं और दूसरे स्वयंसेवकों को साथ में लेकर काम करें, उनको

ट्रेनिंग दें। जब वे स्वतंत्रतापूर्वक काम करने लायक हो जायं तो जरूर उन्हें भी काम सौंपा जा सकता है, परंतु यदि पहले से ही हमारा यह ख्याल रहा कि हम मार्गदर्शक ही रहेंगे, सिर्फ व्याख्यान देते रहेंगे और इतना करने से यह काम हो जायगा तो यह ख्याल गलत है। यह काम वास्तव में कठिन है, और कठिन इसलिए है कि इसका कोई शास्त्र नहीं बना है। किसी ने अनुभव द्वारा कोई चीज बना कर तैयार नहीं कर रखी है। जब यह आरंभ का काम है तो उन लोगों को इसमें पड़ना चाहिए जिन्हें इसका ज्ञान है। मैं अब तक इसी काम में लगा रहता था। मैंने अनुभव से पाया है कि मैं खुद काम नहीं करूंगा तो दूसरों से कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ेगी। मैं करूंगा तो दूसरों से भी कह सकूंगा कि मेरे साथ काम करो। कुछ सहायता भी मिल जायगी। इसी तरह से मैंने काम किया है। मैं स्वयं इस काम को न करता तो इर्द-गिर्द कोई कार्य-कर्ता तैयार नहीं होता। जब मैंने इस तरह का काम शुरू किया था, मैं बाहर नहीं जाता था और काम में मशगूल रहता था। बाहर के लोग मुझे बुलाया करते थे कि व्याख्यान के लिए आइए हमें भी लाभ होगा। मैं कहता कि मैं तो एक काम में लगा हूं। इससे जो मार्गदर्शन मिलता हो वह आप ले सकते हैं। वे कहते थे आपके एक जगह काम करने से हम उस लाभ से वंचित रहते हैं। आप बोलना जानते हैं, आप व्याख्यान से काफी मार्गदर्शन कर सकते हैं। मैं कहता कि मैं बोलना जानता हूं और इसीलिए नहीं बोलता। लेकिन जब वर्षों के बाद लोगों ने देखा कि इसके इर्द-गिर्द कार्यकर्ता जमा हो

गए हैं तब लोगों ने समझा कि यह पागल नहीं था, जो करता था उसके पीछे कुछ विचार थे, और वह विचार सही थे।

इस तरह से जब कहीं काम शुरू करना हो तो लोगों को यह सब समझना चाहिए। संभव है कि अभी आपको सरकारी सहायता भी मिले, लेकिन उस सहायता से आपका काम आसान हो जायगा यह जरूरी नहीं है। संभव है कि सरकारी सहायता से विस्तार के लोभ में पड़ कर काम बिगड़ भी जाए। मैं यह नहीं कहता कि हमें सहायता नहीं लेनी चाहिए। हमें सावधान रहना चाहिए। मतलब यह कि आप अपना काम बिगड़ने न दें और जितना भी काम करें गहराई से किया जाय। अगर एक कुएं की लंबाई और चौड़ाई कम रही तो वह काम दे सकता है, यदि गहराई कम रही और लंबाई-चौड़ाई ज्यादा तो इसका नतीजा यह होगा कि वह एक खाई बन कर मच्छर वगैरा ही ज्यादा पैदा करेगा। खासकर शिक्षा के विषय में यह दृष्टि लाभदायी होती है।

तीसरी बात व्याख्यानों के बारे में है। आजकल जो लोग ऐसे शिविरों में शिक्षा का ख्याल रखते हैं उन्हें वहां व्याख्यान आदि कराने का शौक होता है। व्याख्यान कराने तो चाहिए, ज्ञान की दृष्टि से वे आवश्यक भी हैं, लेकिन मुख्य बात यह है कि जो शिक्षा हमें देनी है वह उद्योग के साथ और उद्योग द्वारा देनी चाहिए। यह वसूल छोटे लड़कों के लिए ही नहीं, जो कोई भी ज्ञान हासिल करना चाहते हों उन सबके लिए लागू है, हम जो कुछ करें उसका प्रत्यक्ष जीवन के साथ संबंध होना चाहिए, तभी जो ज्ञान हासिल होता है वह काम में

आ सकता है, नहीं तो ज्ञान की प्राप्ति और ज्ञान का विकास दोनों असंभव हैं। अगर ज्ञान का क्रम ठीक न रहा, कौन-सा ज्ञान पहले प्राप्त करना चाहिए और कौन-सा बाद में इसका सिलसिला मालूम न हुआ, अथवा कौन-सा लेने योग्य है कौन-सा छोड़ने योग्य, यह तारतम्य समझ में न आया तो हम एक भयानक गली में भटक जायंगे अगर ज्ञान निश्चित दृष्टि से नहीं लिया जाता है तो वैसी ही हालत होती है जैसी कि आजकल के कालेज आदि में मिलनेवाले ज्ञान से। उससे कितने लड़कों को फायदा होता है यह आप देखते ही हैं। उसपर खर्च अधिक होता है और प्राप्ति उससे कुछ नहीं होती, ऐसी हालत हमारी नहीं होनी चाहिए, अर्थात् हमारे यहां तो चरखा चलेगा, चक्की चलेगी, झाड़ू लगेगी, खेत जुतेंगे और फल तथा तरकारियां भी पैदा होंगी। और भी ऐसे बहुत से काम होंगे जिनके द्वारा हम देश की संपत्ति बढ़ावेंगे, इसमें खर्च भी करना होगा परंतु हमारे काम का परिणाम यह आना चाहिए कि जनता की माली हालत में सुधार हो।

मैले का ही दृष्टांत लीजिए। गांवों में इससे बीमारियां फैलती हैं और निर्लज्जता बढ़ती है, खेती के लिए उसका जो उपयोग किया जाना चाहिए वह नहीं होता, चीन, जापान में लोग इसके मूल्य को जानते हैं, किंतु हमारे यहां छूआछूत की भावना के कारण इसके खाद का कोई उपयोग नहीं हो रहा है, जिससे न तो हमारी संपत्ति बढ़ पाती है, और न संस्कृति सुधरती है। एक हजार जन-संख्यावाले गांव में कम-से-कम तीन हजार रुपये का खाद तो पड़ा ही रहता है, यही स्थिति सब गांवों में है।

दूसरा उदाहरण लीजिए। कल जब मैं आया तो लोगों ने जगह-जगह मालाएं दीं, वे सब फूलों की थीं, एक आध भाई ने सूत की दी भी तो उसमें मुश्किल से दस बीस तार होंगे, इसका मतलब यह है कि अब यह कातने का सिलसिला टूट गया है। जो लोग पहले इसमें विश्वास करते थे वे अब यह समझकर कि स्वराज मिल गया है, इसकी जरूरत नहीं महसूस करते और इसे छोड़ रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि जिस चीज से हमें स्वराज मिला है उसे ही हम छोड़ रहे हैं। लोग समझते हैं कि स्वराज्य आ गया है, लेकिन मै कहता हूं कि अगर असली बात भूल गए तो स्वराज्य क्या आया आपस में द्वेष बढ़ाने का साधन हाथ में आया समझो।

अब दुनिया ऐसे जमाने में है कि कोई एक देश किसी दूसरे देश को अपने काबू में ज्यादा देर तक नहीं रख सकता, समय की गति बढ़ गई है, रोमन साम्राज्य पहले १२०० साल तक टिका रहा किंतु ब्रिटिश साम्राज्य १५० साल से अधिक न टिक सका। और आज तो किसी एक देश का दूसरे देश पर अपना राज दस बीस साल से अधिक टिकाए रखना असंभव है। इसलिए विदेशवाले समझते हैं कि अगर आप पहले की तरह मुल्कों को काबू में नहीं रख सकते तो आर्थिक प्रभाव द्वारा दूसरे मुल्कों को अपने हाथ में रखना चाहिए। ये बढ़े हुए मुल्क यह सोचते हैं कि राजकाज की जिम्मेवारी लिए बिना अगर मुल्कों पर व्यापार द्वारा प्रभुत्व रखा जा सकता है तो इससे बढ़कर लाभदायी चीज क्या हो सकती है। यही आज हिंदुस्तान-जैसे देशों के बारे में सोचा जा रहा है। यदि हम

इस बारे में जागृत न रहे और देश की संपत्ति को बढ़ाने की बात भूल गए तो नतीजा यह होगा कि हम गरीबों की उन्नति नहीं कर सकेंगे। अपने देहात हमें निजावलंवी बनाने हैं। वे अपना अनाज पैदा करें, सूत कातकर अपना कपड़ा बनाएं, अपनी शिक्षा का खुद प्रबंध करें, अपनी रक्षा भी करें, सफाई रखें, आपस में झगड़े न होने दें और अगर हो भी जाएं तो खुद ही निपटारा कर लें। जब ऐसे गांवों का निर्माण करेंगे तभी हिंदुस्तान सच्चे अर्थ में आजाद होगा।

सच्ची आजादी का गांधी जी को आभास था और इसीलिए उन्होंने देहातों को महत्त्व दिया था। या यों कहो कि उन्होंने देहातों का महत्त्व समझ लिया था। उन्होंने देखा कि यहां छोटे-छोटे देहात बसे हुए हैं, उनके विकास में ही देश का विकास होगा। विकेंद्रीकरण में ही अहिसा का वातावरण रह सकता है केंद्रीकरण में नहीं। जहां केंद्रीकरण है वहां हिंसा का होना अनिवार्य है, वहां झगड़े मिट ही नहीं सकते। यूरपवालों की संस्कृति में यह सब भरा पड़ा है, इसलिए वहां नित झगड़े चलते रहते हैं। अगर हम अपने यहां इस सबको रोक सकें तो हिंदुस्तान को सच्ची आजादी प्राप्त हो सकती है। ऐसी आजादी से ही हम दुनिया का मार्ग-दर्शन कर सकते हैं। हिंदुस्तान को अभी जो आजादी मिली है सच्ची आजादी नहीं है। मैं एक कदम और आगे बढ़ कर कहता हूं कि सच्ची आजादी आज दुनिया के किसी भी हिस्से में नहीं है। आप अमेरिका या रूस या अन्यत्र कहीं भी जाकर देखिए, सच्ची आजादी देखने में नहीं आएगी। वहांकी हालत ऐसी है

कि मानो बुद्धि किसी संस्था के कब्जे में चली गई है। स्वतंत्र बुद्धि उपलब्ध नहीं है। एक जमाना था जब यह माना जाता था कि शिक्षा मुक्त होनी चाहिए; उस पर स्टेट की सत्ता नहीं रहनी चाहिए। आज तो इससे बिलकुल उलटा चल रहा है। लड़कों के दिमाग एक सांचे में ढाल दिए जाते हैं। जहां जैसा स्टेट होता है वहां वैसी शिक्षा-पद्धति चलती है। ये सब लोग अपने ही ढांचे में दुनिया को ढालना चाहते हैं। जहां मनुष्यों के दिमाग स्वतंत्र हों, स्वावलंबन की प्रतिष्ठा हो, कोई किसीसे लड़ता न हो, सब अपने पांव पर खड़े हों, अपने दिमाग से सोचते हों, ऐसा दृश्य तो दुनिया के किसी हिस्से में नजर नहीं आ रहा है।

लोग समझते हैं कि बुद्धिवालों को मिनिस्टर बनना चाहिए, लेकिन शिक्षण के काम में भी बुद्धिवालों की आवश्यकता होती है। शिक्षण में भी लोगों का ख्याल है कि बुनियादी वर्गों के लिए मामूली आदमी चल जायगा और कालेजों के लिए बुद्धिमान मनुष्यों की जरूरत है। परंतु यह गलत है। दरअसल कालेज की अपेक्षा बुनियादी वर्गों के लिए अधिक काबिलियत के आदमी की जरूरत होती है। बच्चों के दिमाग शून्य-से होते हैं। शून्यसे ब्रह्म निर्माण करने के लिए अधिक-से-अधिक योग्य पुरुष चाहिए।

गांधी जी ने जब कभी हमारे सामने स्वराज्य की बात की है तो यही बताया कि स्वराज्य गरीबों के लिए है और रहेगा। अगर यह भावना हमारे दिल से उठ गई तो हमें जो कुछ मिला है वह सत्ता नहीं, सत्यानाश-जैसी चीज सिद्ध

होगी। मैं कुछ सख्त शब्द जरूर बोला हूं परंतु वे यथार्थ हैं। सत्ता गरीबों के काम आएगी तभी वह दैवीसत्ता होगी। अगर सत्ता गरीबों की सेवा नहीं कर सकेगी तो राक्षसी बन जायगी।

एंजिन डिब्बों को खींच कर ले जाने के लिए होता है वैसे ही हमें भी जनता को साथ लेकर आगे बढ़ना है, उनको उन्नति करना है। हमें तो आम जनता की सेवा की ही सत्ता चाहिए।

भगवान आपको अपने काम में यश दे।

राऊ (इंदौर)
१५ अगस्त १९४८

: ४३ :

टूटे दिलों को जोड़िए

आज दिन भर इतना बोलना पड़ा है कि अब मुझ में अधिक बोलने की शक्ति नहीं है। फिर भी कुछ मुसलमान भाई यहां प्रेम से आ गए हैं तो दो-चार बातें कहूंगा। आप लोग जानते हैं कि आजकल मैं दिल्ली रहता हूं और वहां पर संकट में पड़े हुए लोगों की सेवा कर रहा हूं। उनमें हिंदू और मुसलमान दोनों हैं। जहां-जहां मेरी पहुंच है, जितना बन सकता है, करता हूं। गुड़गांव में मुसलमानों का सवाल मैंने हाथ में लिया है और मेरा खयाल है कि वे अब बस जायंगे।

लेकिन हिंदुस्तान में एक बहुत दुःख की बात हो गई है। हिंदुस्तान में दो कौमें हैं और दोनों एक साथ नहीं रह सकतीं, ऐसा विचार पाकिस्तान के प्रेमियों ने फैलाया। हम लोग इसे नहीं मानते थे। लेकिन हिंदुस्तान के बहुत से मुसलमानों को इस विचार ने बहका दिया। मैं यह नहीं मानता कि उन्हें शिकायतें नहीं थीं। शिकायतें थीं। पर इनका इलाज भी था। इलाज यह नहीं था कि लाखों करोड़ों लोग वतन छोड़ कर बाहर जाएं। भाईचारा रखने से ही समस्या का हल निकल सकता था और निकल सकता है। परंतु यह सब मुसलमानों को नहीं सूझा। बाद में जो घटनाएं घटीं वे बड़ी दुःखदायी हैं। मैंने सुना कि यहां से भी बहुत से मुसलमान हैदराबाद और दूसरी जगह गए और वहां से उन्हें फिर यहीं लौटना पड़ा। वे अब काफी मुसीबत में हैं। उन्होंने गलती की थी, किंतु अगर वे पुनः यहां आए हैं तो हमारा फर्ज है कि उनकी मदद करें। इस तरह हम दिल के साथ दिल को जोड़ सकेंगे, और ऐसा हो गया तो फिर दोनों एक हो सकेंगे। आखिर दोनों अलग तो हैं ही नहीं। सिर्फ इबादत के प्रकार अलग-अलग हैं। वे रहें। जो मुसलमान यहां हैं वे यकीन रखें कि उन्हें संपूर्ण मजहबी आजादी रहेगी परंतु मुसलमान भाइयों से मैं कहूंगा कि आपको हिंदुओं के साथ एक होने की कोशिश करनी चाहिए। इबादत का तरीका अलग रहते हुए भी एक दूसरे से मुहब्बत रखी जा सकती है। ऐसी मुहब्बत रखिए। इस देश को अपना वतन मानिए। देश आप ही का है।

मैं तो आपसे कहूंगा कि आप यहां की भाषा भी सीखिए। नागरी तो आप जानते ही नहीं; आप में से कुछ ने थोड़ी-सी अंग्रेजी सीख ली है, परंतु हिंदी तो नहीं सीखी। यहां के भाइयों की भाषा व लिपि सीख लेने से प्रेम-भाव बढ़ेगा। अभी जो भाई यहां बोल गए, वह जो कुछ बोले उसको सब लोग नहीं समझ सके। मैं भी इसलिए समझ सका कि मैं कुछ फारसी, अरबी और उर्दू जानता हूं। आपकी भाषा यहांके लोग समझ सकें ऐसी होनी चाहिए। बाहर के झगड़ों का असर हमें यहां नहीं होने देना चाहिए। और आपस में प्रेम से रहना चाहिए। इस तरह अगर सब जगह हुआ तो टूटे दिलों को जोड़ना आसान हो जायगा। आखिर बिछुड़े हुए भाई कभी-न-कभी तो एक होंगे ही।

इंदौर (सायं प्रार्थना)
१७-८-४८

: ४४ :

वैश्यों का धर्म

हिंदू-धर्म ने एक समाज-रचना की थी जिसमें लोगों को काम बांट दिया गया था। उसमें वैश्यों के लिए कृषि, वाणिज्य और गौ-सेवा ये तीन धर्म बताए गए हैं।

धर्म वह है जिसके लिए मनुष्य शरीर धारण करता है। धर्म सबके भले के लिए होता है। जो ऐसे धर्म को मानता

है वह जरूरत पड़ने पर आवश्यक त्याग भी करता है। कुटुंब में लोग एक दूसरे के लिए त्याग करते हैं उसीसे उन्हें धर्माचरण का समाधान रहता है। ऐसा न होता तो हमारी हालत जानवरों की तरह होती। इस कुटुंब-व्यवस्था ने हमें जानवर बनने से बचा लिया। इसी प्रकार हर एक के लिए सामाजिक धर्म नियत किया गया था, जिसमें वैश्यों का धर्म कृषि, गौ-सेवा और वाणिज्य द्वारा समाज सेवा करना बताया गया था।

किंतु वैश्यों ने कृषि और गौ-रक्षा को मुश्किल समझ कर उन्हें छोड़ दिया। बाद में यह काम ऐसे लोगों को सौंपा गया जो आवश्यक मेहनत तो कर सकते थे परंतु इस काम के योग्य शास्त्रीय ज्ञान उनके पास न था। इनका एक नया वर्ग बनाया गया जिसकी गिनती बाद में शूद्रों में होने लगी।

मैं मानता हूं कि पुराने जमाने में वैश्य समाज के सच्चे सेवक होते थे। वे अपना पैसा, अपनी बुद्धि, सब कुछ समाज की सेवा में लगाते थे। इसीलिए उन्हें महाजन भी कहा गया है। समाज में व्यापारियों की अच्छी प्रतिष्ठा हुए बिना तो उन्हें 'महाजन' नहीं कहा गया होगा। वे सत्य-निष्ठ और सेवापरायण न होते तो यह पदवी उन्हें न मिलती।

लेकिन जब खेती और गौ-रक्षा का धर्म उनसे छूट गया तो उनका तेज घटने लगा। फिर भी जिन लोगों ने समाज का यह काम संभाला उनमें और वैश्यों में परस्पर संबंध अच्छे रहे। परंतु मेहनत करनेवाले लोग धीरे-धीरे हीन समझे जाने लगे। जब अंग्रेज व्यापारी यहां आए तो उन्होंने यह

सारी परिस्थिति देखी। उन्होंने देखा कि व्यापारी लोग किसानों को नीचा मानते हैं, उनके हाथ का खाते-पीते नहीं। उनमें और व्यापारियों में प्रेमभाव नहीं है। इतनी दूर से आनेवाले अंग्रेजों के हाथ यह अच्छा मौका लग गया। उन्होंने अपना व्यापार शुरू कर दिया। जब सारा व्यापार हमारे व्यापारियों के हाथ से उनके हाथ में चला गया तो उन्होंने यहां अपनी सेना भी बना ली। आगे का हाल तो आप सब जानते हैं।

इस तरह दक्षता न रखने, कारीगरों को हीन मानने और चूसने के कारण व्यापारियों के हाथ में व्यापार के बजाय केवल दलाली बची रह गई।

आज व्यापारी लोग भले-बुरे उपायों से धन कमाते हैं, और कुछ दान भी करते हैं। परंतु देश में उनकी प्रतिष्ठा नहीं रही। उनके लिए अब आदर के शब्दों का प्रयोग नहीं होता। दूकानदार कुछ खरीदने के लिए आए हुए छोटे बच्चों को भी ठगने से बाज नहीं आता। फिर ऐसा राष्ट्र कैसे उन्नत रह सकता है?

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—मुनाफे की मर्यादा क्या होनी चाहिए?

उत्तर—वाणिज्य को गीता के अर्थ में अगर हम धर्म मान लेते हैं तो मुनाफे का सवाल ही नहीं उठता। किसान और आम जनता हमारी मालिक है। और हमें मालिक की सेवा करनी है। इसलिए मजदूर या किसान जो कुछ निर्माण करता है उसके वितरण में हमें सिर्फ मेहनताना लेना

है और हर वक्त यह सोचना है कि देश की संपत्ति कैसे बढ़ सकती है। आठ घंटे काम करके मजदूर केवल एक रुपया पाए और व्यापारी एक हजार, तो यह धर्म नहीं है। धर्मयुक्त व्यापार में न मुनाफा होना चाहिए न घाटा। तराजू के पलड़ों की तरह दोनों बाजू समान होनी चाहिए। लेकिन आज तो व्यापारियों के दिल में संचय की वृत्ति ने घर कर लिया है। सच्चा श्रीमान् तो वह है जिसका धन और धान्य, जैसे तुकाराम ने कहा है, घर-घर में भरा है। जिसके जीवन को उसके इर्द-गिर्द की जनता चाहती है, वह सच्चा धनी है। जिसे लोग चाहते ही नहीं हैं वह तो भिखारी है। कबीर का वचन है :—

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम ॥

नौका में पानी बढ़ जाने पर जैसे हम उसको, एक हाथ से नहीं, दोनों हाथों से बाहर फेंकते हैं, इसी तरह बढ़े हुए धन को घर के बाहर फेंक कर घर को बचाना चाहिए। यदि लेनेवाला मिल जाय तो उसका उपकार मानना चाहिए। फुटबाल की तरह धन का खेल होना चाहिए। गेंद को कोई अपने पास नहीं रखता। वह जिसके पास पहुंचती है वही उसे फेंक देता है। पैसे को इस तरह फेंकते जाइए तो समाज-शरीर में उसका प्रवाह बहता रहेगा और समाज का आरोग्य कायम रहेगा। संस्कृत में पैसे को द्रव्य कहा है, 'द्रव्य' माने बहनेवाला। अगर वह स्थिर रहा तो रुके हुए पानी की तरह उसमें बदबू आने लगेगी।

प्रश्न—महात्मा जी ने तो कंट्रोल उठाया था, क्या अब पुनः कंट्रोल रखने से जनता को तकलीफ नहीं होगी ?।

उत्तर—महात्माजी की सलाह तो ठीक ही थी, लेकिन अब परिस्थिति बदल गई है। जिस राष्ट्र में चरित्रशीलता नहीं है उसमें कोई योजना काम नहीं कर सकती। कंट्रोल उठाया तो चीजों के दाम बढ़ गए। नहीं उठाते तो काला बाजार होता। मैंने इसका हल बताया है कि लगान में अनाज वसूल किया जाय। मैं मानता हूं कि इससे हमारी समस्या काफी सुलझ सकती है। रहा कपड़े के बारे में, उसका मुख्य उपाय तो चरखा ही है। साथ-साथ आज जो मिलें हैं उन्हें देश की मिल्कियत करना चाहिए, समाजवादी तो इसकी मांग कर ही रहे हैं, किंतु मुझे भी परमेश्वर को साक्षी रखकर प्रार्थना-सभा में दुःख के साथ कहना पड़ा कि मिलमालिकों ने देश को दगा दिया है। देश की मिल्कियत होने के बावजूद भी देहात के लोगों को मिलों पर निर्भर नहीं होना चाहिए, हाथ से कपड़ा बना लेना चाहिए। उनको इस बारे में तालीम देने आदि का इंतजाम सरकार को करना चाहिए। अगर अन्न और वस्त्र इन दो चीजों का हम इस तरह प्रबंध कर लेते हैं तो और चीजों की विशेष चिंता नहीं रहती।

इंदौर
१८-८-४८

: ४५ :

बुद्धिजीवी और श्रमजीवी

दुनिया मजदूरों के ही आधार पर चलती है। मजदूर ही दरअसल उसकी मुख्य संपत्ति है। मजदूर शरीर से काम करते हैं, किंतु शरीर के साथ-साथ बुद्धि का भी उपयोग हो सकता है। इस प्रकार शरीर और बुद्धि दोनों मिल कर मजदूर बनता है। एक जमाना ऐसा आनेवाला है जब कि हर एक व्यक्ति मजदूर बनेगा, यानी ऐसा माना जायगा कि जो मजदूरी नहीं करता उसे खाने का हक नहीं है। जो बौद्धिक काम करते हैं वे भी मजदूर हैं। लेकिन आज बौद्धिक काम की कीमत और शारीरिक मजदूरी की कीमत में बहुत फर्क हो गया है। वह मिट जाना चाहिए और मिटेगा। भगवान ने हर एक को शरीर दिया है। भूख भी हर एक को लगती है। शारीरिक श्रम करने से भूख अच्छी लगती है और भूख मिटाने का उपाय शरीर-श्रम से अन्न पैदा करना है। इसलिए हर एक को पैदावार में हिस्सा लेना चाहिए। फिर चूंकि भगवान ने हर एक को बुद्धि भी दी है इसलिए बुद्धि के विकास का मौका भी सबको मिलना चाहिए। मैं ऐसा नहीं मानता कि देश के करोड़ों लोगों के पास बुद्धि नहीं है। बात यह है कि उनको बुद्धि के विकास का मौका ही नहीं मिलता है। हमारे यहां अनेक संत-पुरुष व आध्यात्मिककवि मजदूरों में से ही पैदा हुए हैं। कबीर एक मजदूर था, रविदास और

रामदेव भी मजदूर थे। लेकिन आज तो दुनिया दो भागों में बंट गई है। कुछ लोग बुद्धि से काम करते हैं और बहुत तनख्वाह पाते हैं। हम जानते हैं कि एक चाकू जिसका हम बहुत उपयोग करते हैं, घिसता है और जल्द टूट जाता है। दूसरा चाकू, जिसका हम उपयोग नहीं करते उस पर जंग चढ़ जाता है और वह भी टूट जाता है। आज मजदूरों का शरीर जहां ज्यादा काम से घिसता जा रहा है, वहां शिक्षितों का शरीर कोई काम न होने से घिसता जा रहा है यानी दोनों का नुकसान हो रहा है। बुद्धि की भी यही हालत है। बुद्धिमान लोगों को बुद्धि का ज्यादा काम पड़ता है, इसलिए उनकी बुद्धि घिसती जा रही है और मजदूरों को बुद्धि का काम नहीं मिलता, इसलिए उनकी बुद्धि क्षीण होती जा रही है। इसलिए दोनों वर्गों को दोनों तरह का काम मिलना चाहिए। वेतन भी दोनों को समान मिलना चाहिए। मेरी राय में एक न्यायाधीश को यदि ६ घंटे न्यायदान का काम रहता है तो २ घंटे खेती का भी काम उसे मिलना चाहिए। इस तरह से उसका शरीर भी अच्छा रहेगा, और बुद्धि भी तीव्र होगी और वह अच्छा न्याय भी दे सकेगा। इसी तरह एक मजदूर को यदि ६ घंटे शरीर का काम मिलता है तो २ घंटे का दिमागी काम भी उसे मिलना चाहिए। इस तरह ही दोनों का विकास हो सकेगा। संग्रह की जरूरत न तो मजदूर को होनी चाहिए और न दूसरों को। समाज सब की फिक्र करेगा। आज के लिए आज और कल के लिए कल ऐसा हो सकता है। मजदूर को जितनी मजदूरी मिलती है, न्यायाधीश को

भी उतनी ही मिलनी चाहिए। यह आदर्श है। वहां तक पहुंचने में समय जरूर लगेगा, लेकिन इसके बगैर मानव शांत नहीं रह सकेगा।

मैं जानता हूं कि आप लोगों में जो काम हो रहा है वह प्रेम की दृष्टि रख कर ही हो रहा है। इसीमें सबका लाभ है। मजदूरों को यह नहीं महसूस करना चाहिए कि वे लाचार हैं। आज देश में उत्पादन की बहुत आवश्यकता है। आपको इससे संतोष होना चाहिए कि उत्पादन का काम करके आप देश को टिका रहे हैं। आपको किसीसे द्वेष करने की जरूरत नहीं है। प्रेम से आप सब कुछ पा सकते हैं। दूसरे लोगों को भी मजदूरी में लग जाना चाहिए। अगर वे ज्यादा मजदूरी नहीं कर सकते हैं तो घंटे दो घंटे ही करें। इस तरह हर घर में कुछ-न-कुछ उत्पादन हो जाएगा और हमारा देश संपन्न और सुखी बनेगा।

इंदौर
१९-८-४८

: ४६ :

तेजस्वी विद्या

जब मैं अपने को विद्यार्थियों में पाता हूं तो मुझे बहुत खुशी होती है। इसका कारण यह है कि आपकी और मेरी जाति एक है। आप विद्यार्थी हैं, और मैं भी विद्यार्थी हूं।

हर रोज कुछ-न-कुछ नया ज्ञान हासिल कर ही लेता हूं।

यूनिवर्सिटी में रह कर आप लोग कुछ ज्ञान कमाते हैं और समझते हैं कि यह ज्ञान आपको अपने भावी जीवन में लाभ पहुंचायगा। वास्तव में जहां यूनिवर्सिटी का ज्ञान खतम होता है वहां विद्या का आरंभ होता है। यूनिवर्सिटी का अध्ययन पूरा करने का अर्थ इतना ही है कि अब आप अपने प्रयत्न से विद्या प्राप्त कर सकते हैं। आप, निजाधार बनें निराधार न रहें।

आप बाल्यावस्था में हैं। बाल-पदवी आपको प्राप्त है। बाल तो वह होता है जो बलवान् है, जो मानता है कि यह सारी दुनिया मेरे हाथ में मिट्टी-जैसी है, उसकी जो भी चीज मैं बनाना चाहूंगा बना लूंगा। सारांश यह कि आपको अपनी बुद्धि स्वतंत्र रखनी चाहिए।

विद्यार्थियों के बारे में मेरी यह शिकायत है, कि उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक किसी बात पर सोचने ही नहीं दिया जाता। आज तक हर हुकूमत (स्टेट) की यह कोशिश रही है कि बने बनाए विचार विद्यार्थियों के दिमाग में ठूंस दिए जायं। फिर चाहे वह स्टेट सोशलिस्ट हो, कम्यूनिस्ट हो, कम्यूनलिस्ट हो या और भी कोई इष्ट या अनिष्ट हो। लेकिन यह तरीका गलत है। एक जमाना था जब हमारे गुरु विद्यार्थियों को पूरा विचार-स्वातंत्र्य देते थे। वे अपने शिष्यों से कहते कि हमारे दोषों का नहीं, अच्छी बातों का ही अनुकरण करो। गुरु को तो अपने उस शिष्य पर अभिमान होना चाहिए। जो सोच-समझ कर विचारपूर्वक गुरु की बात को मानने से इन्कार कर देता

है। आजकल तो जो उठता है अपनी ही बात मनवाना चाहता है। विद्यार्थियों के लिए यह एक बहुत बड़ा खतरा है। मानो ये लोग विद्यार्थियों का यंत्रीकरण ही करना चाहते हैं। आपको ऐसे किसी यंत्र का पुर्जा नहीं बनना चाहिए। आपको संत बनना है, पंथ नहीं बनना है। संत वह है जो सत्य का उपासक होता है और पंथ वह है जो किसी बने बनाए पंथ पर जड़वत् चलता है। आप लोग अलग-अलग यूनियनें बनाते हैं। इन यूनियनों में रहने के लिए एक खास विचार-प्रणाली का अनुसरण जरूरी होता है। मैं आपसे पूछता हूं, शेरों का कभी कोई यूनियन बनता है क्या ? यूनियन तो भेड़ों का बनता है। मेरा मतलब यह नहीं है कि दूसरों के साथ आपको सहकार ही नहीं करना है। अच्छी बातों में सहकार जरूर करना है। लेकिन विचारों को स्वतंत्र रखना है और सत्य-दर्शन के लिए उसमें आवश्यक परिवर्तन करने को सदा तैयार रहना है। इसे ही सत्यनिष्ठा कहते हैं। और बलवान बनने का यही रास्ता है।

बलवान बनने के लिए एक और जरूरी बात है संयम। मैं इंद्र हूं। ये इंद्रियां मेरी शक्तियां हैं। उन पर मेरा काबू होना चाहिए। विद्यार्थी-अवस्था में आपको संयम की महान् विद्या सीख लेनी है। जब आप संयम की शक्ति का संग्रह कर लेंगे तो एकाग्रता भी, जो कि जीवन की एक महान् शक्ति है, पा लेंगे।

आप आंख और पांव का भेद समझें। आंख सारी दुनिया के निरीक्षण के लिए खुली होनी चाहिए। उसको स्वैर-

संचार की पूरी आजादी होनी चाहिए। लेकिन पांव तो नियत-मार्ग पर चलने चाहिए। तभी प्रवास होगा। बारिश का सारा पानी अलग-अलग दिशाओं में जहां-तहां बह जाय तो नदी नहीं बनेगी। नदी बनने के लिए नियत दिशा चाहिए। संयम की शक्ति इस दृष्टांत से समझ लीजिएगा।

एक बार मुझे विद्यार्थियों के 'तरुण उत्साही मंडल' में जाना पड़ा। मैंने कहा कि उत्साही मंडल तो वृद्धों के होने चाहिए। जिस राष्ट्र को अपने विद्यार्थियों को उत्साहित करने की जरूरत पड़ती है, वह राष्ट्र तो खत्म ही हुआ समझिए। तरुणों को धृति की आवश्यकता है; उसीसे उत्साह टिकता और कारगर होता है। जैसे गीता में कहा है कि धृति और उत्साह मिल कर कर्मयोग बनता है। आपको कर्मयोगी बनना है।

एक सवाल हर वक्त पूछा जाता है कि विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं। विद्यार्थियों को आत्मनीति में प्रवीण बनना है। हर बात में उनको जागरूक रह कर अपनी नीति निश्चित करनी है। राजनीति में विद्यार्थी साक्षी और अध्यक्ष बन कर रहें। हम अध्यक्ष उसे कहते हैं जिसकी आंख सारी दुनिया पर रहती है। विद्यार्थी-दशा में आप जीवन से संबंधित सारे प्रश्नों पर अध्यक्ष की भूमिका से निरीक्षण-परीक्षण करते रहें और अपने निर्णय बनाते रहें। समय आने पर उन पर अमल करें।

कर्मयोगी बनने के लिए विद्यार्थियों को कुछ-न-कुछ निर्माण-कार्य करते रहना चाहिए। निर्माण के बिना निःसंशय ज्ञान

भी नहीं होता। प्रयोग से प्राप्त ज्ञान ही निःसंशय ज्ञान होता है। मैं विद्यार्थियों से पूछता हूं, आप लोग रोटी बनाना जानते हैं? वे कहते हैं, 'नहीं', हम तो सिर्फ खाना जानते हैं। रोटी पकाना तो लड़कियों का काम है। रोटी पकाना अगर लड़कियों का काम है तो रोटी खाना भी लड़कियों का ही काम रहने दीजिए। अपने लिए 'ज्ञानामृतं भोजनं' रख लीजिए। जिन लोगों ने लड़कियों और लड़कों के कार्यों को इस तरह विभाजित किया, उन्होंने दोनों को गुलाम बनाने का तरीका ढूंढ़ निकाला और ज्ञान को पुरुषार्थहीन बनाया है।

श्रीकृष्ण बचपन में हाथों से काम करता था मेहनत मजदूरी करता था। इसीलिए गीता में इतनी स्वतंत्र प्रतिभा का दर्शन हमें होता है। हमें ढेर की ढेर विद्या हासिल नहीं करनी है। तेजस्वी विद्या हासिल करनी है। जिस विद्या में कर्तृत्व शक्ति नहीं, स्वतंत्र रूप से सोचने की बुद्धि नहीं, खतरा उठाने की वृत्ति नहीं वह विद्या निस्तेज है। मैं चाहता हूं कि आप सब तेजस्वी विद्या प्राप्त करने की वृत्ति रखें।

इलाहाबाद
२४-८-४८

: ४७ :

आदर्श सेवक गोपालकृष्ण

आज भगवान कृष्ण के जन्म का उत्सव हमारे देश के

हर देहात में मनाया जा रहा है। परमेश्वर का जन्म नहीं होता। किंतु किसी एक महापुरुष के जीवन के साथ ईश्वरत्व को जोड़कर एक नैतिक आदर्श प्राप्त करने के साथ-साथ अपनी भक्ति-भावना को संतुष्ट और परितुष्ट करने की यह युक्ति हिंदू-समाज ने ढूंढ निकाली है। इस तरह सदियों से हमारे समाज में राम और कृष्ण के जन्मोत्सव मनाए जा रहे हैं। इन दो विभूतियों ने हमारे हृदय पर कब्जा कर लिया है। रामचंद्र को हिंदुस्तान की जनता आदर्श स्वामी के तौर पर जानती है। राजा राम का जय-जय कार सर्वत्र चलता है। हिंदुस्तान में अनगिनत राजा हुए। परंतु हमने तो एक राजाराम को ही जाना। दूसरे किसी राजा को नहीं जाना। रामचंद्र ने सबसे सेवा ली—मनुष्यों से भी ली, और जानवरों से भी ली। वे ऐसे स्वामी थे जो सेवकों को अपने से ऊंचे स्थान पर रखते थे। जैसा कि तुलसीदास जी ने गाया है, 'तुलसी कहूं न राम सो साहिब सीलनिधान'।

श्रीकृष्ण आदर्श सेवक था। उसने सब की सेवा की, और किसी से सेवा नहीं ली। मनुष्यों की भी की और जानवरों की भी की। बचपन से मजदूरों में रहा। गायों को चराता था, इसलिए संसार उसे गोपालकृष्ण के नाम से पहचानता है। जब वह द्वारका में सत्ताधीश बना, तब भी बीच-बीच में गोकुल आता था और गायों की सेवा करता था। वह वीर पुरुष था। पर सत्ता का उसने अपने लिए कभी उपयोग नहीं किया। धर्मराज को अभिषेक करवाया, और राजसूय यज्ञ में अपने लिए छोटे से छोटा, नीच समझा जानेवाला, काम मांग लिया। मांगा,

इतना ही नहीं, लोगों ने उसे वह खुशी से दिया और उसने वह किया। नम्रता की यह परिसीमा है कि कोई महापुरुष छोटा काम मांगे और वह उसे दिया भी जाए। महाभारतकार ने चित्र खींचा है। संध्या के समय युद्ध समाप्त होता है, क्षत्रिय-कुलोत्पन्न अर्जुन संध्या-वंदन में मग्न है, और कृष्ण घोड़ों की सेवा कर रहा है। कृष्ण ने निजी जीवन में शरीरपरिश्रम का अनुभव लिया, और उसका एक असामान्य तत्त्वज्ञान हमारे लिए छोड़ दिया। अनेक भाष्यकार भाष्य करने की फिक्र में पड़े हैं कि गीता में ज्ञान-योग प्रधान है या कर्म-योग अथवा भक्ति-योग। लेकिन वे आज तक किसी एक निर्णय पर नहीं आ सके हैं। आते भी कैसे, गीता ने तो ज्ञान, कर्म और भक्ति का भेद ही मिटा दिया था। जो कर्म, वही ज्ञान, और वही भक्ति, इस तरह एक अपूर्व रसायन उसने हमारे सामने रखा है।

आखिर जो शरीरधारी होता है वह शरीर छोड़कर जाता ही है। लेकिन कृष्ण ने शरीर भी कितने आनंद और अनासक्ति से छोड़ा! एक शिकारी के तीर से वह घायल होता है। शिकारी डरता हुआ पास आता है। कृष्ण उसे कहता है, तू डरता क्यों है? मुझे शरीर छोड़ना ही था। तू तो निमित्त बन गया। तूने मुझ पर उपकार ही किया। अनासक्ति और क्षमाशीलता का कितना महान् आदर्श वह हमारे लिए छोड़ गया।

गीता में जीवन का जैसा सर्वाङ्गपूर्ण और उत्तम विचार मिलता है वैसा, मुझे कबूल करना चाहिए कि अपने अनेक

भाषाओं के ज्ञान में मैंने और कहीं नहीं पाया। जो चीज़ कृष्ण ने इस ग्रंथद्वारा हमें दी है, उसके आधार पर अकेला मनुष्य सारी दुनिया का मुकाबला कर सकता है, और जय प्राप्त कर सकता है। उसने हमें विश्वास दिलाया है कि जहां भक्त और भगवान एकत्र होते हैं वहीं लक्ष्मी है, वहीं विजय है, वहीं सच्ची नीति है और वहीं सब कुछ है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भगवद्गीता का निरंतर पठन और मनन करें और उसमें से जितना भी समझ में आए, उस पर अमल करें; अवश्य भला होगा।

राजघाट, दिल्ली
२७-८-४८

: ४८ :

आर्थिक समस्या

हमारे देश में यों तो आज अनेक समस्याएं उपस्थित हैं, किंतु महंगाई की समस्या सबसे अधिक व्यापक हो गई है। इसके संबंध में विशेषज्ञों की एक समिति भी मुकर्रर की गई थी, जिसने अपनी कुछ सूचनाएं भी पेश की हैं। मैंने भी इस संबंध में अपने कुछ विचार उपस्थित किए थे। आज उन्हींके बारे में कुछ कहूंगा।

मेरा सुझाव यह था कि किसान से जमीन का लगान अनाज के रूप में वसूल किया जाय। इस पर, सिवा इसके

कि एक भाई ने इसे पुराने जमाने में वापस जाना बताया है, किसीने कोई आक्षेप नहीं किया है। हमारी समस्या के हल होने में यदि इससे कुछ मदद मिलती है तो यह कोई आक्षेप नहीं है। मेरा तो दावा है कि उससे बहुत सहूलियत होगी। फिर, मैंने जो सुझाव पेश किया है उसमें और पुराने जमाने की प्रथा में अंतर भी है। पहले उपज का हिस्सा लिया जाता था। मैं निश्चित रकम के लिए निश्चित अनाज लेने की बात कहता हूं। इससे हमारी सरकार की स्थिति मजबूत होगी और लोगों को काफी राहत पहुंचेगी। किसान को अपने लगान की अदाई के लिए अनाज बेचना पड़े यह दुस्सह है। उसके पास जो चीज है उसे न मान कर अन्य चीज मान्य की जाय यह उचित नही।

मेरा दूसरा सुझाव खद्दर के संबंध में था। सरकार को चाहिए कि इस बारे में किसान को अपनी सहायक नीति जाहिर करे। ऐसा करना सरकार के लिए आवश्यक है। जो कपास पैदा करता है सरकार उसे कपड़ा बुनने की सब सहूलियतें दे। ऐसा होगा तो कपड़े की तंगी नहीं रहेगी। किसान तो आज राह देख रहा है, कि हमारे नेता, जो खादी उद्योग की बात कहा करते थे, उसे पूरा करने कब हमारे पास आएंगे? दूसरी बात सरकार को यह करनी चाहिए कि वह चरखे को तालीम में दाखिल करे। उससे उद्योग का जो वातावरण पैदा होगा उसकी बड़ी कीमत है। इस वातावरण को बनाने की आज बड़ी आवश्यकता है। स्कूल में छोटे बच्चे सीखेंगे, उनसे कुटुंब सीखेगा और सारे देश में उद्योग

की लहर फैल जायगी। फिर, सरकार को यह भी चाहिए कि किसान के पास से जो अतिरिक्त सूत मिले, उसे खुद खरीद ले और उसमें जो ज्यादा दाम देना पड़े उसका चार्ज मिलों पर डाले। उन्हीं की वह जिम्मेवारी भी है। मैं तो यह भी मानता हूं कि देश में जो बुनकर समुदाय पड़ा है, उसे मिल के सूत से कभी राहत नहीं पहुंचाई जा सकती। भारत के २० लाख बुनकरों का काम मिल के सूत से नहीं चल सकता। उनके लिए हमें चर्खे के गृह-उद्योग को ही संरक्षण देना होगा।

अन्न की कमी होते हुए भी हमारे देश में चावल की तराशी की जाती है। चावल को तराशने से १२ फी सदी पोषण-शक्ति नष्ट हो जाती है। जब देश में ऐसी स्थिति है कि अनाज बाहर से मंगाना पड़ता है, बाढ़ और वर्षा से फसलें नष्ट हो रही हैं, तब वहां पोषणशक्ति को इस प्रकार नष्ट कर देना नैतिक गुनाह है। फिर पोषणशक्ति ही नहीं, इसके अलावा इस तराशी से १५ फी सदी वजन भी नष्ट हो जाता है। इसके जवाब में मुझे कहा गया है कि आजकल पूरी तराशी नहीं की जाती, नीम-तराशी की जाती है। पर मैंने आंकड़े प्राप्त किए हैं जिनसे मालूम हुआ है कि इस नीम-तराशी में भी परिमाण में दस फी सदी कमी अवश्य आती है।

मिसाल के तौर पर मध्य प्रांत में पिछले साल तीन लाख टन चावल इकट्ठा हुआ, उसमें तीस हजार टन इस तराशी में नष्ट हो गया। वहांके अन्न मंत्री श्री पाटील ने मुझे ये आंकड़े दिए हैं। इसे रोकने के लिए फौरन कदम उठाया जाना चाहिए।

'अधिक अन्न उपजाओ' का नारा आजकल चलता है, तो मैं पूछता हूं, तंबाकू की खेती में जमीन क्यों बरबाद की जा रही है ?" मैं जानता हूं, कन्नड़, आंध्र, और दूसरी जगह, भी उत्तम-से-उत्तम जमीन तंबाकू में लग रही है। हमारे व्यापारी खुश हैं कि तंबाकू का व्यवसाय बढ़ रहा है और विलायत के लोग अमरीका के बजाय भारत का तंबाकू मांगते हैं। भारत-सरकार ने भी इस व्यवसाय की उन्नति के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति की है। पर हमें यह सब रोकना चाहिए और अपनी सारी जमीन अनाज के काम में लेनी चाहिए।

गांधीजी ने तो यहां तक कहा था कि गमलों में फूलों के बजाय सब्जी लगाई जाय। गांधी जी की यह सूचना हँसी में टाल देने की नहीं थी। इसके पीछे लोगों की इच्छा-शक्ति को सामूहिक रूप से मजबूत बनाने की प्रेरणा थी।

हम बाहर से अनाज मंगाएं यह ठीक नहीं है। हमें तो बाहर की इस अनाज-बंदी के लिए एक शुभ-दिन मुकर्रर कर लेना चाहिए.और ऐसा प्रण कर लेना चाहिए कि कुछ भी हो, बाहर से अनाज नहीं मंगायेंगे। अगर हम ऐसा करें, और सामूहिकरूप से उस पर चलें, तो इससे राष्ट्र का बल बढ़ेगा। और अनाज की समस्या हल हो जायगी।

भारत की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए विशेषज्ञों ने सलाह दी है कि शराब-बंदी का कार्यक्रम मुल्तबी कर दिया जाय। इसे पढ़कर मुझे आश्चर्य तो नहीं हुआ, पर मैं कहता हूं कि इस सलाह पर आचरण न करने में ही राष्ट्र की उन्नति है। विशेषज्ञ हर चीज को एक आंख से देखते हैं। वे दो आंख

से देखें तो विशेषज्ञ ही न रहें। पर हमें तो एक आंखवालों की बात को दोनों आंखें खोल कर देखना है।

शराब-बंदी की बात कोई वैसे ही नहीं है। कांग्रेस ने नैतिक दृष्टि से इसे अपने कार्यक्रम में रखा है। गांधी-अरविन समझौता हुआ था तब भी शराब-बंदी आंदोलन की छूट रखी गई थी। इस कार्य में पिकेटिंग करते हुए महिलाओं का खून तक गिरा है। हमारे शास्त्रों ने पंचमहापातक गिने हैं इनमें जो पांचवां पातक है वह पिछले चार पातकों में सहकार करना है। हमें इस महापातक से बचना चाहिए। भावना की बात छोड़ दें तो भी, शराब से गरीबों की कितनी बरबादी होती है यह हम जानते हैं। उसे देखते हुए मुझे आशा है कि इस एकांगी-बात पर अमल नहीं किया जायगा।

राजघाट, दिल्ली
३–६–४८

: ४६ :

अनशन की मर्यादाएं

आज तो गांधीजी के दिए हुए एक शिक्षण के विषय में कुछ कहना चाहता हूं क्योंकि उसका आजकल बहुत दुरुपयोग हो रहा है। उन्होंने हमें अनेक प्रकार का शिक्षण दिया है; लेकिन सत्याग्रह का शिक्षण ही शायद सब में शिरोमणि कहा जायगा। वैसे सत्याग्रह का अर्थ तो बहुत व्यापक है।

सारी जीवनचर्या में सत्य की निष्ठा रखना सत्याग्रह है। उस अर्थ में परमेश्वर की प्रार्थना भी सत्याग्रह है। मन, वचन और शरीर का संयम भी सत्याग्रह है। बड़े सवेरे उठने का नियम भी सत्याग्रह है। लेकिन उसका एक छोटा-सा अर्थ है—"अन्याय प्रतिकार का एक साधन।" इसी अर्थ में लोग उसे जानते हैं और मैं भी उसी अर्थ में आज उस शब्द को ले रहा हूं।

अन्याय-प्रतिकार के कई तरीके बापू ने समय-समय पर हमें सिखाए और अपने जीवन में उनका प्रयोग किया। उनमें अनशन यानी उपवास भी एक है। अनशन कोई नई चीज नहीं है। सब धर्मकारों ने उसे किसी-न-किसी तरह महत्त्व दिया है। चित्तशुद्धि और संयम साधना के लिए, या प्रायश्चित्त के तौर पर, अथवा परमात्म-स्मरण के अनुसंधान में उपवास का विधान है। शारीरिक आरोग्य के लिए भी कुदरती-उपचारवाले उपवास बताते हैं। लेकिन गांधी जी ने उपवास का जो तरीका आजमाया वह अलग श्रेणी का है। उसका स्वरूप समाज की विवेक बुद्धि जाग्रत करना रहा है। उसमें भी दो प्रकार हैं। एक नियत-कालिक यानी कुछ मुद्दत के लिए; और दूसरा आमरण, यानी जब तक कोई चीज, जिसके लिए उपवास शुरू किया हो, नहीं बन जाती, तब तक के लिए। बापू ने दोनों तरह के प्रयोग किए। उनमें से आमरण-उपवास का आजकल बहुत अनुकरण हो रहा है। अभी मैं मध्यभारत गया था। वहां एक भाई का आमरण उपवास शुरू था। समझदार थे। मेरी बात मान ली और

उपवास छोड़ दिया। यहां भी वैसा ही एक प्रसंग आया था। ऐसे अनेक आमरण-उपवास इन दिनों हुए। उनमें से कुछके साथ मेरा संबंध आया, और कुछ के बारे में मैंने अखबार में पढ़ा, जैसा कि आप लोगों ने भी पढ़ा होगा। हिंदुस्तान के बहुत से हिस्सों में इस तरह हर हफ्ते कहीं-न-कहीं उपवास होते रहते हैं। उसका मतलब तो इतना ही है कि हमारे देश में आज सर्वत्र असंतोष है, और वह इस रूप में प्रगट हो रहा है।

लेकिन मुझे कहना चाहिए कि इन दिनों जितने उपवास हुए उनमें, नैतिक या आध्यात्मिक दृष्टि से जिनका मैं ठीक बचाव कर सकूं ऐसे उपवास मेरे देखने में प्रायः नहीं आए। गांधी जी के रहते हुए भी लोग उपवास करते थे। गांधी जी उन्हें रोक भी देते थे। पर अब उनके जाने के बाद वैसी स्थिति नहीं रही। इसलिए हमारी जिम्मेवारी बढ़ गई है। हमें समझना चाहिए कि इतने महान् शस्त्र का उपयोग इतनी आसानी से करना ठीक नहीं है।

उपवास एक आध्यात्मिक शस्त्र है। और अहिंसक शस्त्रागार में उसका स्थान होना भी चाहिए। अहिंसा की दृष्टि से तो शस्त्र और शस्त्रागार ये शब्द निकम्मे हैं। लेकिन हम एक चलती हुई परिभाषा का उपयोग कर लेते हैं। भावार्थ यह है कि अहिंसा के पास जो कुछ आध्यात्मिक साधन हैं उनमें उपवास का एक विशेष स्थान है। लेकिन आजकल उसका जो उपयोग हो रहा है, वह या तो बाहरी दबाव डालने के लिए होता है या केवल किसी चीज की तरफ ध्यान खींचने के लिए। ऐसे छोटे काम के लिए इतने बड़े शस्त्र का उपयोग शोभा

नहीं देता, फिर इस तरह उसका दुरुपयोग करने से उसकी प्रतिष्ठा ही चली जाती है। उपवास तो एक महान् नैतिक शस्त्र है, जिसे आखिरी शस्त्र समझना चाहिए और आत्यंतिक आवश्यकता के बिना उसका उपयोग करना ही नहीं चाहिए।

उपवास के लिए जैसे समुचित कार्य की आवश्यकता है, वैसे ही अधिकार की भी जरूरत होती है। हर कोई, जो सेवा की भावना रखता है, केवल इसी बल पर इस शस्त्र का उपयोग करे, यह ठीक नहीं है। मामूली शस्त्र का उपयोग भी बिना अधिकार नहीं किया जाता। जो बंदूक चलाना नहीं जानता, वह उसका उपयोग कैसे करेगा ? उपवास-रूप शस्त्र के प्रयोग के लिए शुद्धि, विवेक, समत्व और परिपूर्ण निरहंकारिता चाहिए। सत्याग्रह में निजाग्रह होना ही नहीं चाहिए। सत्य को ही अपना आग्रह प्रगट करने देना चाहिए। जिसने दीर्घ काल तक मातृवत् दुनिया की सेवा की है उसे ही इस संबंध में कोई अधिकार हो सकता है।

एक तीसरी बात भी है। समुचित कार्य और अधिकार होने पर भी अगर देश या आसपास की परिस्थिति उपवास के लिए अनुकूल नहीं है, तब भी वह नहीं किया जा सकता। जहां इन तीनों बातों की अनुकूलता है, वहीं इस शस्त्र का उपयोग किया जा सकता है।

ऊपर से अहिंसक दिखाई देने पर भी, इन तीनों बातों के अभाव में यह शस्त्र हिंसक बन जाता है। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि हिंसा सिर्फ तलवार से ही होती है। इस तरह के अनुचित उपवास से भी हिंसा हो सकती है।

और अगर दया-बुद्धि से समाज ऐसे उपवास के वश होता है तो वह दया बुद्धि भी गलत है। अगर मेरी आवाज पहुंच सकती है, तो मैं सेवापरायण लोगों से निवेदन करूंगा कि वे जितने तरीकों से सेवा कर सकते हैं करें, परंतु इस शस्त्र का उपयोग फिलहाल छोड़ दें। मेरा मतलब यह नहीं है कि मैं इस शस्त्र के उपयोग की कतई मनाही कर रहा हूं, परंतु जहां लोगों की सरकार चल रही है, और जहां हम जानते हैं कि गांधी जी की तपस्या का एक अंश भी हमारे पास नहीं है, वहां हम इस हथियार का उपयोग न करें तो बेहतर होगा।

भक्तों का एक लक्षण यह भी है कि वे एक दूसरे की सलाह लेकर, मशविरा करके कोई काम करते हैं। इसलिए अगर किसी को उपवास की आवश्यकता महसूस हुई तो वह दूसरों से सलाह करें; ऐसों से नहीं जो उसे उपवास के लिए भड़काने-वाले हों, बल्कि ऐसों से जो कि रागद्वेष-रहित तटस्थ पुरुष समझे जाते हों। हर कोई कहेगा कि मैं अंदर की आवाज के अनुसार काम कर रहा हूं तो उसमें आत्मवंचना होगी। अंदर की आवाज तो विशुद्ध पुरुष के भीतर ही प्रगट हो सकती है। वरना वह आवाज परमेश्वर की होने के बजाय शैतान की ही होनी संभव है।

राजघाट, दिल्ली

१०–६–४८

: ५० :

सच्ची सेवा

आपके गांव में अंधों को तालीम दी जा रही है। यह सेवा का एक बड़ा ही सुंदर काम हो रहा है। उसे देखने के लिए मुझे बुलाया गया था इसलिए मैं खुशी से आ गया। क्योंकि जहां सेवा का काम चलता है वहां परमेश्वर रहता है इसलिए आज शाम की प्रार्थना यहां करने की कल्पना अच्छी लगी। यहां का काम देख कर मुझे प्रसन्नता हुई। पावनता भी लगी। दीनों की सेवा अगर उनकी दीनता कायम रख कर की जाती है तो वह ऊंचे दर्जे की सेवा नहीं कही जा सकती। जिस सेवा से उनकी दीनता मिटती है वही सेवा सच्ची है। यहां ऐसी ही सेवा की कोशिश हो रही है। अंधों को बुनाई वगैरा उद्योग, गायनकला और कुछ पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है। यहां का शिक्षण पाकर वे स्वावलंबी बन सकते हैं। कुछ काम कर सकते हैं।

दरअसल अंधे तो वे हैं जो भगवान को भूले हुए हैं। जो भगवान को नहीं भूलते, वे चाहे पंगु हों, अंधे हों, अनाथ नहीं होते। इस दुनिया में कौन अनाथ और कौन सनाथ है, भगवान ही जानता है। जो लोग अपने को भाग्यशाली मानते हैं वे दीनों की सेवा करके, साबित करें कि वे सचमुच भाग्यशाली हैं। नरदेह मिला है तो उसका यह मतलब नहीं है कि एक दिन ऐसे ही मर जाना है। उसका मतलब तो

यह है कि हम पुण्याचरण करें, सेवा-कार्य करें, और शरीर छूटने के पहले आत्मा को पहचान लें। जिसे आत्मा को पहचानना है उसको अभेद बुद्धि से दु:खियों की सेवा करनी चाहिए। उनमें और अपने में फर्क नहीं करना चाहिए।

मुझे याद है, हम बचपन में कोंकण के एक गांव में रहते थे। आपका यह गांव कुछ बड़ा ही है। वह तो इससे भी छोटा था। मुश्किल से सौ घर होंगे। वहां हमारे एक चाचा थे, जो अंधे थे। हम उन्हें अंधे चाचा कहकर पुकारते थे। वे एक क्षण भी खाली नहीं बैठते थे। कुओं से पानी लाते, दिनभर रस्सियां बटते, और दूसरा भी बहुत काम करते रहते थे। सात आठ साल के बाद बड़ोदा में—जहां हम शिक्षण के लिए गए थे—एक दिन उनकी मृत्यु का तार मिला। रिश्तेदार के मर जाने पर तीन दिन या दस दिन अछूते रहने का हमारे यहां रिवाज था। इसे मराठी में 'सूतक मानना' कहते हैं। लेकिन अंधे चाचा का सूतक नहीं माना गया। मैंने मां से पूछा, "इनका सूतक क्यों नहीं माना जाता है ?" मां ने कहा "बेटा, वे ऐसे कोई रिश्ते में तो नहीं थे। बाहर के एक सज्जन थे। हमारे घर में उनको आश्रय दिया गया था।" मुझे उनकी मृत्युतक पता नहीं था कि वह हमारे चाचा नहीं थे। हमारे घर में उनकी हुकूमत चलती थी। वह अपने ही समझे जाते थे। मुझे उनके संबंध के अपने अज्ञान पर आश्चर्य तो हुआ, पर बात साफ थी। हमें जिसकी सेवा करनी है उसमें और अपने में कोई फर्क नहीं मानना चाहिए। इस तरह अभेद भाव से अगर हम दीनों और पंगुओं की सेवा

करते हैं तो उस सेवा में परमात्मा का दर्शन पा सकते हैं।

आपके गांव का यह कार्य ही आपको बहुत कुछ सिखा रहा है। भाइयो, निश्चय समझो, अगर सेवा करते-करते मृत्यु आवे तो मरने का दिन आनंद से बीतेगा। जो बिना सेवा किए और लोगों को दुःख पहुंचा कर, जीवन बिताता रहता है उसे मृत्यु के समय सुख और शांति का अनुभव नहीं हो सकेगा। आप लोग एक छोटे देहात में रहते हैं। आपस में प्रेम से रहिएगा। यह शरीर तो हमें इसीलिए मिला है कि हम सब पर प्रेम करें। मैंने सुना है कि अंधों के आश्रम की एक भैंस आपके गांववालों में से किसी ने चुरा ली है। मुझे इससे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि हिंदुस्तान के लोग इतने दरिद्री हो गए हैं कि ऐसी पाप-बुद्धि उन्हें होती है। यह तभी दूर हो सकती है जब हम एक दूसरे की सेवा करने के लिए जीएंगे। सबको एक परिवार के लोगों की तरह समझेंगे। ऐसा होगा तो फिर चोरी कहां और किसकी होगी? क्या अपने ही घर में कोई चोरी करता है?

तुग़लकाबाद
११-६-४८

: ५१ :

हमारे शेषनाग

मसूरी में, मैं अनायास ही आ गया। मुझे जाना था

मीराबहन से मिलने के लिए, जो, आप जानते हैं बरसों से हिंदुस्तान की सेवा में लगी हुई हैं। उधर हृषीकेश में उन्होंने एक पशुलोक बनाया है जहां गायों की सेवा होती है। मुझे जाना तो वहीं था लेकिन मीरा बहन यहां आई हुई थीं इसलिए मैं यहां आ गया। यहां कुदरत का दर्शन तो बहुत ही पवित्र है। हिमालय के दर्शन भी यहांसे होते हैं।

एक जमाना था जब हमने गिरिशिखरों को वैराग्य का साधन माना था। ज्ञान प्राप्ति और चिंतन के लिए लोग वहां जाते थे। लेकिन अब ये स्थान वैराग्य के तो नहीं रहे। सामान्य जीवन के भी नहीं रहे, विलास के हो गए। फिर भी मैं जानता हूं कि जो लोग यहां आ पहुंचते हैं उनके दिल में कुछ-न-कुछ पवित्र भावना पैदा हुए बिना नहीं रहती होगी।

यहां आते ही पहला दर्शन रिक्शा का होता है। मनुष्य की एक प्रतिष्ठा होती है जब मनुष्य से ऐसा काम लिया जाता है तो उस प्रतिष्ठा को हम भूल जाते हैं, जब कोई बीमार या पंगु ऐसी सेवा ले ले तो वह क्षंतव्य हो सकता है परंतु यहां तो एक वाहन के तौर पर रिक्शा का आम उपयोग किया जाता है। अभी प्रार्थना सभा के लिए आते वक्त मुझसे भी पूछा गया कि "क्या आप रिक्शा में बैठेंगे?" यानी, हमारी विवेक-बुद्धि इस बारे में इतनी मंद हो गई है। मैं जानता हूं कि रिक्शा का रिवाज केवल यहीं नहीं है, बहुत बड़े-बड़े शहरों में यह रिवाज चल पड़ा है। अंग्रेजों की यह देन है। मोटर निकल

जाती है लेकिन अपने पीछे धूल छोड़ जाती है। इसी तरह अंग्रेज भी यह कीर्ति पीछे छोड़ गये हैं। लेकिन हमें सोचना चाहिए। और इस प्रथा को बंद करना चाहिए।

यहां का सब काम मजदूरों के बलपर चलता है। शेष-नाग पृथिवी को उठा लेता है, वैसे ये लोग हमको ऊंचा उठाए हुए हैं। मैंने देखा कि मजदूर पीठ पर इतना बोझा लाद कर चलता है कि उससे उसकी पीठ बिलकल झुक जाती है। इससे उसका जीवन बहुत जल्द क्षीण होनेवाला है। जवानी में चंद रोज वह काम कर लेगा, पर आगे तो नहीं कर पाएगा। सड़क पर झाड़ू लगानेवाले को एक छोटी सी झाड़ू मिली है और कमर झुका कर वह झाड़ू देता रहता है। मेरा उस तरफ सहज ध्यान गया, क्योंकि मैंने स्वयं वह काम किया है। जिसने जो काम किया है वही उस काम का सुख-दुःख जान सकता है। बहुत से घरों में भंगी कमोड साफ करने आते हैं। दो-दो, तीन-तीन बार साफ करते जाते हैं। उनका इतना उपकार होते हुए भी वे अछूत और नीच समझे जाते हैं। जो उपकार करने वाले को नीच मानता है उससे अधिक नीच कौन हो सकता है?

मैं जो कुछ कह रहा हूं वह मानो अपने से ही कह रहा हूं। आप उसपर विचार कीजिएगा और उचित सुधार कर लीजिएगा इतना ही मुझे कहना है।

मसूरी
२४-६-४८

: ५२ :

चर्खा—हमारे विचार का चिह्न

आज की हमारी यह प्रार्थना गांधी-जयंती-सप्ताह की प्रार्थना है। प्रार्थना के साथ-साथ सब लोगों ने मिलकर कताई का कुछ कार्यक्रम भी यहां रखा है। गांधीजी की यह जयंती उनकी मृत्यु के बाद हो रही है, इसलिए इसके साथ अब गांधी-जी के शरीर का संबंध नहीं रहा। उन्होंने तो हमें पहले ही समझा दिया था कि उनकी जयंती का अर्थ चर्खे की जयंती समझना चाहिए। लेकिन उनके समझाने पर भी, देह की आसक्ति जो देहधारी को रहती है, उसके कारण, उनके जीवन-काल में उनकी जयंती के साथ उनके देह का कुछ-न-कुछ संबंध रहना अनिवार्य था। लेकिन अब यह एक शुद्ध विचार की ही जयंती रहेगी।

मैंने कई दफा अनुभव किया है कि जहां कोई शारीरिक श्रम का सामूहिक कार्यक्रम होता है जैसा कि आज यहां कताई का था, मुझे वहां जो आनंद आता है वह और कहीं नहीं आता। चर्खा-जयंती का नाम गांधी जी ने ही अपनी जयंती को दे रखा था। इसमें उनकी दूरदर्शिता थी। गांधी जी के विचार का बाह्य चिह्न बताने के लिए चर्खे से बढ़कर और कोई साधन नहीं हो सकता। चर्खा अविरोधी परिश्रम का प्रतीक है। हम जानते हैं कि बिना परिश्रम के दुनिया में कोई चीज पैदा नहीं होती। हम में से हर एक दुनिया की चीज़ें इस्तेमाल

तो करता है, पर निर्माण नहीं करता। चर्खा हमें यह प्रेरणा देता है। हर एक मनुष्य कपड़ा पहनता है। अगर वह अपने कपड़े के लिए आवश्यक सूत कात लेता है तो उससे वह सारी जनता के साथ अपना अनुसंधान कर सकता है। वैसे तो दुनिया में चीजें पैदा करने के लिए बहुत सारे यंत्र भी बनाए गए हैं, लेकिन उनसे दुनिया में वर्गभेद निर्माण होते हैं, वर्ग-कलह बढ़ता है, और भोग-वासना को पोषण मिलता है।

कोई भी व्यक्ति अपना भार दूसरों पर न रखे, दूसरों के कंधे पर न बैठे। जो बैठा है वह वहां से उतर जाय तो दुनिया की बहुत सेवा हो सकती है। चर्खा हमें इसका दर्शन कराता है। चर्खा कहता है कि हम सब को मजदूर बनना है। अगर हम मजदूर नहीं बनते हैं तो हम चोरी करते हैं, हिंसा करते हैं, दूसरों पर संकट डालते हैं।

अभी मैं मीरा बहन से मिलने के लिए मसूरी गया था। वहां मैंने इतनी वेदना का अनुभव किया कि वहां की सुंदर हवा भी मेरे लिए निकम्मी हो गई। हमारे ही जैसे इन्सान वहां पशु की तरह रिक्शा खींचते हैं और वहां उसका एक साधारण वाहन के रूप में आम उपयोग होता है। मजदूर को वहां इतना बोझ उठाना पड़ता है कि उसकी कमर टूट जाती है। यह सब देख कर हृदय को पीड़ा होती है। जहां जाता हूं मजदूर की यही दशा पाता हूं। मेरे मन में जब यह भावना होती है कि यह सब भेदभाव कब दूर होगा, तो परमेश्वर उत्तर देता है, इनको दूर करना तो तेरे हाथ में है। "कराग्रे वसते लक्ष्मीः"—हाथ की अंगुलियों में लक्ष्मी बसती है। अगर

हम इसे समझ लें तो सारे के सारे मजदूरी के काम में लग जायंगे। तब ही हमें मजदूरों के सुख-दुःख की कल्पना हो सकेगी। "शिवो भूत्वा शिवं यजेत्" शिव का यजन करने के लिए शिव ही बनना चाहिए। शिव बने बगैर शिव की सच्ची पूजा नहीं कर सकते यही न्याय मजदूरों के बारे में भी लागू होता है। अगर हम मजदूरी करने लग जायंगे तो हम मजदूरों की तकलीफों को समझ सकेंगे, औजारों में भी सुधार होगा, हृदय से हृदय मिलेगा और अहिंसा का राज्य होगा। जब तक यह नहीं होता, स्वराज्य का दर्शन नहीं होगा।

एक भाई के घर में मैं गया तो वहां गांधी जी का एक सुंदर चित्र लगा था, जिसमें गांधी जी चर्खे पर बैठे कात रहे थे। घरवाले से पूछा कि क्या वह चित्र उन्हें कातने की प्रेरणा देता है? उन्होंने कहा, "कातना तो हम से बनता नहीं, पर कातने के बारे में हमें आदरभाव जरूर है और इसीलिए यह चित्र हमने रखा है।" मैंने सोचा कि अगर आदरभाव है तो इस चित्र को देखनेवाला कभी-न-कभी कातने भी लग जायगा, लेकिन मैंने यह भी सोचा कि हम घरों में गरुड़-वाहन विष्णु का चित्र रखते हैं और उसके बारे में हमें आदर भी होता है परंतु गरुड़ पर बैठने की तो हम कभी नहीं सोचते। इस चक्रवाहन मूर्ति की भी ऐसी ही दशा हुई तो उससे हमें क्या लाभ होगा?

हमने चर्खे को झंडे में स्थान दे रखा है। वहां जो चक्र आया है, वह तो चित्र की सहूलियत के लिए आया है। लेकिन वह चर्खे की ही निशानी है जिसके साथ प्राचीन स्मरण भी जोड़ दिए गए हैं। चर्खे का यह झंडा कहता है कि हमारा

राष्ट्र किसीका शोषण नहीं करेगा, किसीसे शोषित नहीं होगा। यह प्रतिज्ञा चर्खे में भरी है।

जब मैं देखता हूं कि चर्खे का प्रचार जल्दी नहीं होता तो मुझे आश्चर्य नहीं होता। क्योंकि चर्खा कोई नई सिगरेट या चाय नहीं है; वह तो आज की दुनिया की विचारधारा को तोड़नेवाला एक महान् विचार है। समझ-बूझकर दुनिया के चालू प्रवाह को विरोध करने की जिसमें हिम्मत है वही कातेगा, उसी को कातना भी चाहिए। इसलिए अगर चर्खा आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता है तो मैं निराश नहीं होता बल्कि मेरा उत्साह बढ़ता है। क्योंकि मैं जानता हूं कि यदि वह ऐसे ही धीरे-धीरे आगे बढ़ेगा तो हमारी उन्नति हो सकती है।

मैंने सहज ही आज के प्रसंग में ये विचार आपके सामने रख दिए हैं। यहां जो कताई का कार्यक्रम होता है वह केवल गांधी-जयंती की एक विधि नं रहे। बल्कि जीवन का अंग बन जाय और केवल कताई ही नहीं पूनी भी बनानी चाहिए। बहुत लोग कातते तो हैं परंतु पूनी बाहर से लेते हैं। मैं पूछता हूं तो कहते हैं, कताई तो यज्ञ है। यह धारणा गलत है। पूनी बनाना भी यज्ञ है। मैं इसीलिए आज यहां कातने के बजाय पूनी ही बनाता रहा।

सारांश, जिसका किसी के योग्य हित से विरोध नहीं है और जो सबके लिए मुफीद है, मजदूरी का ऐसा हर एक काम यज्ञ हो सकता है। चर्खा ऐसे ही यज्ञ की निशानी है।

राजघाट, दिल्ली
३०-६-४८

: ५३ :

मंदिर-प्रवेश—एक प्रतिज्ञा

कल मैंने चरखे के आधार पर हिंदुस्तान के मजदूरों की हालत की तरफ आप सबका ध्यान खींचा था। आज हरिजनों के विषय में एक दो बातें कहने की आवश्यकता मालूम हुई है। आज ही बीकानेर से एक तार आया था। यहांकी तरह वहां भी गांधी-जयंती-पक्ष मनाया जा रहा है। कुछ भाइयों ने इस निमित्त हरिजन मुहल्लों में सफाई का काम किया। इस अपराध के कारण अब चूंकि उन्हें मंदिर में नहीं जाने दिया जा रहा है, इसलिए वे अनशन कर रहे हैं। यह सब सुनकर उस आत्मा को कितनी वेदना होती होगी जिसने सारी उम्र हरिजन बननें की पराकाष्ठा की, और यह प्रार्थना की कि अगर दूसरा जन्म पाना हो तो हरिजन का मिले।

इसी जगह प्रार्थना सभा में मैंने एक बार कहा था कि जैसे मद्रास में हरिजन-मंदिर-प्रवेश का आंदोलन हुआ वैसा यहां नहीं किया गया। मेरे इस कथन का अखबारों में प्रतिवाद भी किया गया था। लेकिन बीकानेर की यह घटना मेरे कथन पर प्रकाश डालती है। अगर हम मंदिरों में अपने हरिजन भाइयों को प्रवेश देते हैं तो उन पर कोई उपकार नहीं करते, बल्कि भगवान के भक्तों को भगवान से दूर रखने के पाप से हम छुटकारा पा जाते हैं।

वैसे तो जहां मंदिर-प्रवेश हुआ है वहां मेरे हरिजन भाई

मुझसे पूछते हैं कि क्या केवल हमारा मंदिर में प्रवेश करा देने से ही आप संतोष मान लेना चाहते हैं ? क्या हमारे लिए और दूसरी बातों की जरूरत नहीं है ? तो मैं उनको कहता हूं कि मंदिर-प्रवेश एक प्रतिज्ञा है। आपका मंदिर में प्रवेश करा कर हम भगवान के सामने प्रतिज्ञा करते हैं कि आपकी भूमिका सब तरह अपने बराबरी की किये बिना हम चुप नहीं रहनेवाले हैं। लेकिन जहां मंदिर-प्रवेश ही नहीं हो रहा, वहां और बातें क्या होतीं।

मैं आपको एक नजदीक की मिसाल देता हूं। मैं यहां की भंगी बस्ती में रहता हूं। वहां बाहर से देखने में तो एक अच्छी दीवार चारों तरफ दिखाई देती है, परन्तु भीतर जगह की तंगी की वजह से इतनी गंदगी हो जाती है कि जीवन असह्य हो गया है। भंगियों ने इस बारे में मांग भी की है, पर अभी तक कुछ नहीं हुआ है, यह हालत उस जगह की है जहां हिंद की राजधानी है, और जहां खुद गांधी जी रह चुके हैं।

कुछ रोज पहले श्रीजगजीवनरामजी ने वहां के हरिजन भाइयों को कहा था कि अपना उद्धार तुम्हें खुद ही करना है, और उसका एक ही रास्ता है कि तुम लोग यह भंगी काम छोड़ दो। मैं भी उनके इस कथन का समर्थन करता हूं। मैंने बरसों भंगी काम किया है परंतु वह देहात में किया है। शहर के पाखाने इतने गंदे होते हैं कि शायद मैं भी वहां हार जाऊं।

अगर हम हरिजनों के साथ रह कर काम करें तो उनकी दिक्कतों का सहज पता चल सकता है। लेकिन उनकी दिक्कतों को समझने या उन्हें कम करने की कोशिश करने के बजाय

हम उनके सामने कुछ टुकड़े भर फेंक देते हैं। इससे तो उनका अपमान ही होता है। यहां मुझे एक धनवान का किस्सा याद आता है जिसने किसी संकट से मुक्त होने पर निर्वासित भाइयों को मिष्टान्न खिलाने का विचार किया था। निर्वासितों ने उसे कह दिया कि हमें तुम्हारे मिष्टान्न की जरूरत नहीं है। अगर तुम हमारी कोई मदद ही करना चाहते हो तो हमारे पास जो हमारे सारे अनाथ बच्चे हैं उनमें से किसीको ले जाओ। लेकिन उससे यह नहीं हो सकता था। निर्वासितों ने मिष्टान्न लेने से इन्कार कर दिया। मेरे खयाल से निर्वासितों ने यह उचित ही किया। हम हरिजनों के साथ भी इसी तरह का व्यवहार करते हैं। उन्हें अन्न देते हैं तो बहुत बार जूठा भी देते हैं और यह सब स्वराज्य में हो रहा है। तो हम किस मुंह से अफ्रिकावालों को जवाब दे सकते हैं? हमें हरिजनों के बीच जाना चाहिए। जिस हालत में वे रहते हैं उसका अनुभव लेना चाहिए। तभी हम उनसे एक रूप हो सकेंगे और उन सबकी सेवा कर सकेंगे।

राजघाट, दिल्ली
१–१०–४८

: ५४ :

सब की सम्मिलित उपासना

आज, सूर्य के हिसाब से, गांधीजी का जन्मदिन है।

उनके देह की तो मृत्यु हो गई है, किंतु उसके बाद भी हमने यह जन्मदिन चलाया है। इसलिए यह एक आत्म-चिंतन और परमात्मा की प्रार्थना का ही दिन हो गया है। उसके साथ का शारीरिक संबंध छूट गया है, केवल शुद्ध आध्यात्मिक संबंध ही रह गया है।

आप सब लोग जानते हैं कि गांधी जी का सारा जीवन ही एक अखंड प्रार्थना रहा है। उनकी हमेशा यही कोशिश रही है कि जीवन का हर एक लक्ष परमेश्वर की सेवा से भरा हो। और आखिर उन्होंने भगवान के चिंतन में प्रार्थना-भूमि पर ही शरीर छोड़ा। आज मुझे आप लोगों से और कुछ कहने को नहीं सूझता। लेकिन परमेश्वर की प्रार्थना हम सब मिलकर, भक्तिभाव से, सारे भेदों को भूल कर करते जायं तो बहुत भला होगा। और भगवान की कृपा से हम सबको वैसी प्रेरणा भी परमात्मा से मिले, आज मैं यही प्रार्थना करता हूं।

भारत का यह महान् भाग्य है कि उसमें सब धर्मों के लोग रहते आये हैं। जितने धर्म हैं वे सब परमेश्वर की उपासना के भिन्न-भिन्न रूप हैं। परमेश्वर अनंत नामी, अनंत रूपी, अनंत गुणी है। उसकी उपासना हम अपनी भावना के अनुसार अनंत प्रकार से करते हैं। जितने प्रकार होंगे उतना मानव का विकास सर्वांगीण होगा। इसलिए सारी दुनिया में भगवान की एक ही प्रकार की उपासना हो ऐसा हमारा आग्रह नहीं होना चाहिए। बल्कि आग्रह यह होना चाहिए कि उपासना किसी भी प्रकार की हो, एक ही की,

और उसकी की जाय, कि जो अंतर्यामी है, सबका परीक्षण करनेवाला है, सबका पालन करता है, सब में समान रूप से रहता है, सबपर जिसका रहम है।

हिंदुस्तान में अनेक लोग अपनी-अपनी पद्धति के अनुसार उपासना करते आये हैं। यही उसकी विशेषता है। वरना इस देश के अनेक टुकड़े हो सकते थे। भारत के इस एकता के संदेश को अगर हम सब तरफ फैलाना चाहते हैं तो हमें अलग-अलग उपासना करनेवाले सबको इस तरह एक करना चाहिए कि उनकी अलग उपासनाएं भी रहें, और सब एक जगह भी आ जायं, और स्त्री-पुरुष आदि का भी कोई भेद न रहे। 'अमृतस्य पुत्रः'—परमेश्वर के पुत्र के नाते एक हो जायं और भक्तिभावना से अपने चित्त को उसके पावन प्रेम के जल में धोते रहें। मैंने तो सिवा परमात्मा की भक्ति के, ऐसी कोई दूसरी पावन वस्तु नहीं देखी, जो हृदयों को धो सकती है और सबको एक बना सकती है। भाई बहिनों को एक करनेवाली कोई शक्ति है तो मातृप्रेम है, पितृप्रेम है। मानव मात्र को एक करने के लिए भगवान की भक्ति से बढ़कर कोई साधन नहीं। मनुष्यों के जितने झगड़े होते हैं सब संकुचित भावना के कारण ही होते हैं। उनको मिटाने के लिए व्यापक विचार की आवश्यकता है। वह व्यापक विचार भगवान की भक्ति से मिल सकता है। उसके सामने गरीब-अमीर का भेद, बलवान-दुर्बल का भेद, ज्ञानी और अज्ञानी का भेद नहीं रहता। जैसे समुद्र में आकर सारी नदियां एक हो जाती हैं, सब काष्ठ अग्नि में जलकर एक हो

जाते हैं, वैसे ही सब हृदय भगवान की भक्ति में विलीन होकर एक रूप हो जाते हैं।

जो प्रार्थना करेंगे वे जीवन के साथ प्रार्थना को पिरो देंगे। दिनभर क्या-क्या भूलें हुईं उस पर वे सोचेंगे, और शाम की प्रार्थना में भगवान से उनके लिए क्षमा-याचना करेंगे। दिनभर कुछ-न-कुछ सेवा-कार्य करेंगे, और शाम को वह भगवान को समर्पण कर देंगे। प्रार्थना कोई यांत्रिक वस्तु नहीं है वह हृदय की क्रिया है। इसलिए प्रार्थना में जितने लोग सम्मिलित होंगे वे सब एक दूसरे के जीवन में एक रूप होकर रहेंगे। पानी में पानी मिलता है तो भेद कैसा ? आकाश में आकाश मिल जाता है तो आकाश ही रह जाता है। उस स्थिति का दर्शन करने के लिए शब्द नहीं हैं।

इसलिए आज के शुभ दिन पर मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि दिनभर में ऐसा समय निकालिए जब हम देह से अलग हो सकें, और व्यापक रूप से कुछ विचार कर सकें। अगर हम ऐसी उपासना करेंगे तो भारत का उद्धार होगा, और भारत का संदेश सबको मिल सकेगा। दुनिया भारत की तरफ आतुरता से देख रही है।

गांधीनगर, जयपुर
२–१०–४८

: ५५ :

चंद जरूरी बातें

अभी निजाम के मामले में हिंदुस्तान की सब जमातों ने जो संयम दिखाया उसकी प्रशंसा सब ओर से की गई है। और वह उचित ही है। लेकिन हमको इस संयम से ही संतोष नहीं करना चाहिए। बल्कि आगे बढ़कर सब जमातों में पूर्ण प्रेमभाव और एकता संपादन करने की कोशिश करनी चाहिए। एक बुरी हवा आई थी और उसके झोंके में बहुत से लोग बह गए। मगर जो कुछ हो गया सो हो गया। उसका फल भी लोगों ने चख लिया। इसलिए आम जनता अब उस मनोवृत्ति की नहीं है।

मैं यह नहीं कहता कि जनता को जो बहकानेवाले लोग थे, उनका भी परिवर्तन हो चुका है यह मैं जानता हूं। उनमें से कुछ तो पछताते हैं, मगर कुछ दबे हुए भी हैं। जो भी हो अब जनता पर उनका असर तो नहीं रहा या कहिए बहुत कम हो गया है। इस अवसर का लाभ हमको उठाना चाहिए। और जो कुछ बातें हमको करनी हैं वह कर लेनी चाहिए। इन बातों के करने से ही हिंदू और मुसलमान दोनों जमातों के दिल मिल सकते हैं।

उस दृष्टि से, हमारी सरकार ने मेवों को फिर से बसाने का जो निर्णय किया है उसका मैं अभिमंदन करता हूं। गत दो चार महीनों में मेरा ध्यान उस ओर गया है। और उसका

मुझ पर बहुत असर पड़ा है। अतः मेरी राय में हमारी सरकार ने इस मामले में काफी सहानुभूति से काम किया है। जिस तरह से हिंदू और सिख दुःखी भाइयों के संबंध में उसने अपनी जिम्मेदारी महसूस की, उसी तरह से मेवों के बारे में हुआ है। सरकार के इस फैसले के फलस्वरूप मेव चंद रोज में ही बस जाएंगे। लेकिन जिस सुबुद्धि से यह काम हुआ है, उसको ध्यान में रखते हुए ही नीचे के अधिकारीगण भी काम करेंगे तो दोनों जमातों में काफी सद्भावना पैदा हो सकती है। यह तो नीचे के अधिकारियों के हाथ में रहता है, वे अच्छे काम को बिगाड़ सकते हैं। मगर मैं कह सकता हूं कि इन बदली हुई परिस्थितियों में वे ठीक भावना से काम करेंगे और हिंदू-मुस्लिम एकता के पक्ष में यह बहुत अच्छा रहेगा।

इसी तरह दिल्ली के रहनेवाले भी इस दिशा में बहुत कुछ कर सकते हैं। सैकड़ों वर्षों से दोनों जमातें यहां एक साथ रहती आई हैं। दोनों के जीवन में कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं है। दोनों में काफी समानता है ऐसा मैं मानता हूं। उनके निजी मित्रों में दूसरी जमात के लोग अधिक-से-अधिक होने चाहिए। इस प्रकार की व्यक्तिगत मैत्री से जो दिल की एकता बनती है वह राजनीतिक भावों से नहीं बनती। यह बात जरूर है कि राजनीतिक मामला बिगड़ने से समाज की स्थिति भी बिगड़ने लगती है। मगर जो चीज व्यक्तिगत मैत्री में रहती है वह राजनीति में नहीं हो सकती। अतः आप एक दूसरे के उत्सवों में हिस्सा लें, एक दूसरे की जबानें सीखने की कोशिश करें और एक दूसरे के धार्मिक ग्रंथों का

जितना परिचय हो सके प्राप्त करें। चूंकि हवा अनुकूल आ रही है, इसलिए अगर आप इस अनुकूल हवा में सद्भावना-पूर्वक चलेंगे तो दोनों जमातें एक जगह हो सकती हैं इसमें मुझे संदेह नहीं है।

आखिर कौमों में जो फर्क हुआ है वह उपासना का ही हुआ है और अगर सही दृष्टि से आप देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि इस्लाम से बहुत-सा लाभ हुआ है। हिंदू तब तक इतने असंख्य देवी-देवताओं को संभालते रहे। एक ही ईश्वर की उपासना चल सकती है और यही चीज हमारे वेदों में पड़ी है। उपनिषद भी इसी चीज को दोहराते हैं। फिर भी एक ईश्वर की विचारधारा जो सबको सूझती जा रही है उसका बहुत कुछ श्रेय इस्लाम को है। उसने एक ही ईश्वर का प्रचार किया है। इसके अलावा मुझे कई मुसलमान मिले हैं, जो हिंदुओं में प्राणी के प्राण के विषय में जो भाव हैं उनकी कद्र करते हैं। यह चीज तो मैंने मिसाल के तौर पर कही है। और भी अनेक ऐसी बातें हैं जो हमारे जीवन और विचार-पद्धति को एकरूप बना सकती हैं। यदि कुछ चीजों में विविधता भी है तो यह विविधता एकता के पेट में समा सकती है।

जो चीज मैंने धार्मिक फिर्कों के बारे में कही वही हरिजनों के बारे में भी कहना चाहता हूं। हरिजनों को हम जल्द से जल्द अपने अंदर समा लें, या अच्छी भाषा में यह कि, हम जल्द से जल्द कैसे हरिजन बनें, इस बात की कोशिश करनी चाहिए। अभी मैं जयपुर का दौरा करके आया हूं। वहां के मेहतरों ने काफी शिकायतें मेरे सामने रखीं। उनकी मांगें आर्थिक हैं।

जब वे अपनी मांगें मनवाने के लिए हड़ताल करते हैं, तो उनसे जबर्दस्ती काम कराया जाता है। और भी तरह-तरह के अत्याचार हरिजनों पर होते हैं। एक बात का मैं यहां जिक्र कर चुका हूं। वह भी ऐसी ही है। स्वराज्य में यह सब मिट जाना चाहिए। कई भाइयों ने मुझसे कहा कि हमें तो आप के इस स्वराज्य से बहुत डर लगता है। आपने जो वादे किये वह न जाने कहांतक सही रहेंगे। जहां आपके हाथों में सत्ता आ गई है वहां हमारा क्या होगा? हमें अपनी वृत्ति से उनको जवाब देना चाहिए। जिस तरह अंग्रेजों ने अपना वादा पूरा किया उसी तरह हमें भी करना चाहिए, अंग्रेजों ने साल भर में हिंदुस्तान छोड़ देने का वादा किया और उसके दो चार महीने पहले ही छोड़ गये। हमारी विधान सभा ने जिस अस्पृश्यता को अवैध घोषित किया है, उसे हमें जड़ से मिटा देना चाहिए। इस गांधी-पक्ष में बहुत कुछ काम किया जा सकता था और थोड़ा बहुत लोगों ने किया भी। मगर बहुत वर्षों से यह देखने में आया है कि सामाजिक सुधार में लोगों की उतनी दिलचस्पी नहीं है जितनी कि राजनीति में। पहले की बात तो क्षम्य हो सकती है, मगर अब स्वराज्य मिलने पर ऐसा नहीं होना चाहिए। समाज-सुधार के बिना राजनीति भी कमजोर पड़ जाती है।

अगर ये दो बातें हम कर लेते हैं तो तीसरी बात जो भिन्न-भिन्न भावनाओं की है आसानी से ही हल हो जायंगी। मुझे उसका उतना डर नहीं है। अब तक ये सब प्रांतीय भाषाएं अंग्रेजी भाषा के जुल्म के कारण दबी हुई थीं। उनको उठने का मौका ही नहीं मिला था। यह भाषा-प्रेम अभिमान के

रूप में प्रगट होने पर भी उन सब में जो भाषा के आधार पर अलग-अलग प्रांत बनाये जाने के समर्थक हैं एक भारतीयता की भावना मौजूद है। अतः अगर सही दृष्टि रही तो उससे कोई खतरा पैदा नहीं होगा। हमें उससे डरना नहीं है केवल सही मार्ग बताना है। अगर उपर्युक्त दो बातों में हम जुट जायंगे तो तीसरी बात जल्द ही हल हो जायगी ऐसा मैं मानता हूं।

राजघाट, दिल्ली
९-१०-४८

: ५६ :

शुक्रवार की प्रार्थना

कल मैं यहांसे बाहर जा रहा हूं। वैसे भी बीच-बीच में मैं बाहर जाता और वापस आता रहा हूं। मगर इस मर्तबा कुछ अधिक अर्सेके लिए जा रहा हूं। इसलिए आज आप लोगों के सामने कौन-सी चीज रखूं, इस बारे में मैं सोच रहा था। आखिर मुझे यही सूझा कि हर शुक्रवार को यहां हमारा प्रार्थना का जो कार्यक्रम चलता है उसे आप सब भक्तजन अपना सर्वस्व समझ कर जारी रखें, इसके लिए आप लोगों से नम्र प्रार्थना करूं। हमारे शास्त्रकारोंने भी बताया है कि संध्या समय भगवान का स्मरण करने से जीवन सफल होता है। और फिर ऐसी भूमिपर बैठकर, जहां

गांधीजी का दहन हुआ हो, इस शुक्रवार के दिन और जीवन के इस अन्तिम समय में अहंकारमुक्त होकर भजन करना विशेष अनुभूति उत्पन्न करनेवाला है। दरअसल तो जीवन का कोई भी क्षण अंतिम हो सकता है। कोई भी मनुष्य यह नहीं कह सकता कि मैं अभी हूं और दो क्षण और रह सकूंगा या जो वाक्य मैं बोल रहा हूं उसे पूरा भी कर सकूंगा। इसलिए अगर यही बात हम समझ लें तो हर क्षण अंतिम है। और उस हालत में चित्तशुद्धि के लिए दूसरी कोई बात करने की जरूरत ही नहीं रहती। यहां पर जब हम प्रार्थना करते हैं, तो ऐसा स्मरण हमें सहज ही होना चाहिए।

"साधुओं ने अनेक प्रकार के साधनों का अनुभव किया है। परन्तु सब की तुलना करके यही पाया है कि परमेश्वर की भक्ति से बढ़कर कोई साधन नहीं है। ईश्वर की महान् योजना में हमारा एक अत्यंत तुच्छ हिस्सा है। उस योजना को हम जानते भी नहीं हैं। जैसा वह चाहता है, वैसे ही हो रहा है। हम तो बीच में निमित्त मात्र बन जाते हैं। फिर भी हमारा अहंकार ऐसा है, जो हमें महत्त्व देता है और महत्त्व देकर हमें हीन बनाता है। अगर हम अपनेको इस महत्त्व से खाली कर सकें और केवल ईश्वर की शक्ति से अपनेको भर सकें, तो उससे हममें वह चेतना प्रकट होगी जो और किसी तरह नहीं हो सकती।

गत छः महीने से मैं दिल्ली में हूं। यहां कई तरह से काम करने का मौका मिलता रहा है। लेकिन प्रार्थना से जो समाधान, शान्ति और आत्मभाव का अनुभव हुआ, वह किसी

दूसरे काम से नहीं हुआ। यहां आप लोग उत्तम शांति रखते हैं। सब स्त्री-पुरुष एकत्र बैठते हैं। और प्रार्थना भी ऐसी बनी है जिसमें सब धर्मों का हिस्सा है, किसी भी संकुचित धार्मिक भावना की गुंजायश नहीं। इतना पवित्र साधन हमारे हाथ आया है उसका हम पूरा उपयोग करें और हर शुक्रवार को घर के लाख कामों को गौण समझकर यहां दौड़ते हुए आ जायं। वैसे तो ईश्वर सर्वत्र विराजमान है। फिर भी कुछ स्थानों में उसकी हमें विशेष अनुभूति होती है। इसीलिए हम तीर्थ-यात्रा करते और मंदिर में जाते हैं। यह तो एक ऐसा स्थान है, जहाँ कोई भेदभाव है ही नहीं। इस पूर्ण अभेदभाव में डूबकर अगर हम ईश्वर-भजन का आनंद लें, तो हमारा जीवन भी उससे अभिन्न हो जाता है। परमेश्वर की उपस्थिति में या उसको साक्षी करके जो प्रार्थना यहां होती है, उससे हमें सत्संगति का भी लाभ मिलता है। सत्संगति से बढ़कर प्रत्यक्ष चीज दुनिया में और कोई नहीं है। और यह सत्संगति भी तब जब आप सर्वोत्तम मनस्थिति में होते हैं। . . . जहाँ ऐसी सत्संगति मिले, इस प्रकार भगवान का स्मरण हो, ऐसी पवित्र भूमि और ऐसी पवित्र आत्मा की याद हो इस प्रकार जो अपूर्ण संगम यहां बना है उसका वर्णन करने में मेरी वाणी काम नहीं देती।

राजघाट, दिल्ली
१५-१०-४८

: ५७ :

बशिशरिस् साबिरीन्

आप लोग काफी देर से मेरा इंतजार कर रहे हैं, पर जो देरी हुई है वह आपके ही काम के लिए हुई है। आज सबेरे श्रीत्रिलोकसिंहजीसे काफी बातें हुई हैं और आप लोगों को फिर से बसाने के बारे में जो तकलीफें या रुकावटें मालूम हुई थीं वे हमारी बातचीत के दौरान में सब दूर हो गई हैं। जब अंग्रेजों का राज्य था तो वे लोग अपने आपको जनता का मालिक समझते थे पर अब चूंकि स्वराज्य आ गया है ये अधिकारी लोग आपके सेवक हैं और आप यहां के बादशाह हैं, अगर आप लोग इस मुल्क को अपना वतन मानेंगे, इसके लिए मरने को तैयार रहेंगे, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपको किसी भी तरह की तकलीफ नहीं होगी, आप के साथ वैसा ही बर्ताव किया जायगा जैसा हिंदुस्तान के दूसरे सब लोगों के साथ किया जाता है। सरकार चाहती है कि आपकी तकलीफें दूर हों और आप लोग फिर से अच्छी तरह बस जायं।

आपकी जो खास तकलीफें हैं उनमें मुख्य तो यह है कि जमीनें लेते वक्त आपको कुछ रकम पेशगी देनी पड़ती है, लेकिन चूंकि यह देखा गया है कि ऐसी रकम देना आप के लिए मुमकिन नहीं है इसलिए तय किया गया है कि आप को बिना पेशगी रकम के जमीनें दे दी जायं। अब आप को पैसा नहीं

देना पड़ेगा। आप लोग अपनी जमीनें फौरन ले लेवें और काम में लग जायं।

आपकी दूसरी शिकायत यह थी कि मुसलमानों में मेवों के सिवा, खानजादा, सैयद, शेख आदि जो गैर-मेव हैं उनको भी बसाया जाय। तो आपको मैं बताना चाहता हूं कि उन मुसलमानों के लिए दूसरी योजना बनाई गई है, उसके अनुसार उन सबको भी बसाया जायगा।

लोगों की शिकायत है कि जो जमीनें मेवों को दी जानी चाहिए थीं वे अब भी शरणार्थियों को दी जा रही हैं। अगर ऐसा हुआ है तो अब आगे ऐसा नहीं होगा और अगर मेवों के लिए रखी हुई जमीनों में से कोई जमीन शरणार्थियों को दे दी गई है तो बदले में मेवों को दूसरी जमीन दी जायगी। सरकार जितनी जिम्मेवारी शरणार्थियों के बारे में महसूस करती है उतनी ही आप लोगों के बारे में भी।

पलवल वगैरा में आपके जो मकान पड़े हैं वे आपको मिल जायंगे। उसमें कोई खास कठिनाई नहीं होगी। और भी जो तकलीफें आपको होंगी वे यहां के अधिकारी दूर करने की कोशिश करेंगे।

एक जमाना हमारे मुल्क में ऐसा आया कि हिंदू-मुसलमान दोनों पागल बन गए। जब काफी नुकसान हो चुका तो दोनों सोचने लगे। दोनों की अक्ल जो गुम हो गई थी ठीक हो गई। अब हिंदू कहते हैं कि मुसलमान हमारे भाई हैं। मुसलमान कहते थे कि हम पाकिस्तान जायंगे, न जाने वहां क्या मेवा मिलनेवाला था। मेवा वगैरा तो वहां कुछ था नहीं, क्योंकि

ये मेव तो वापस यहां आ गए हैं। मुसलमान यह समझ गए।

मुझे यह बताया गया है कि पटवारी वगैरा रिश्वत लेते हैं। सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ लेकिन मैं कहता हूं, अगर रिश्वतखोरी चलती है तो न सिर्फ रिश्वत लेनेवाला बल्कि देनेवाला भी जहन्नुम में जाता है। जो रिश्वत देकर अपना काम निकालता है वह रिश्वत लेनेवाले को मौका देता है, इसलिए पापी दोनों हैं। बड़े-बड़े लोग भी रिश्वत देकर अपना काम निकालते हैं लेकिन आपको इस पाप से फारिग होना है।

मुझे किसी ने सुनाया कि मेव जरायम पेशा जैसे हैं। लेकिन मैंने कहा कि मैं इस बात को नहीं मानता। आखिर मेव किसान हैं। किसान हर वक्त भगवान को याद करता है। बारिश के न होने पर कमिश्नर के पास नहीं जाता, भगवान की ही शरण लेता है क्योंकि वही रिजक देनेवाला है। इसलिए किसान का तो अल्लाह से सीधा रिश्ता रहता है। ऐसे लोग जरायम-पेशा नहीं हो सकते। मुझे यकीन है कि मैंने उस भाई से जो कुछ कहा उसकी आप अपने बरताव से तसदीक करेंगे और खेती में जुट जायंगे।

(एक भाई ने कहा महाराज धरती मिले तब तो तसदीक होवे।) यह भाई ठीक कहता है। अगर आप लोगों को पहले ही जमीन मिल जाती तो जो सवाल इस भाई ने उठाया है न उठता। मैंने बहुत कोशिश की कि पिछले मई मास में ही आप लोगों को जमीनें मिल जायं, परंतु सरकार की तो मीटिंगें हुआ करती हैं और जब एक मीटिंग में काम खतम नहीं होता

तो दूसरी मीटिंग होती है और इस तरह देरी होती रहती है। बरसात मीटिंग के लिए रुकती नहीं। ईश्वर अपना काम वक्त पर करता ही रहता है। इसलिए जमीनें देरी से मिलने में अगर किसी का कसूर है तो हम लोगों का ही है, आप लोगों का नहीं।

खैर, आपको खेतों में मेहनत करके यह साबित कर दिखाना होगा।

(एक आवाज : हां साबित कर दिखाएंगे।)

बहुत अच्छा, मुझे विश्वास है कि आप साबित कर दिखाएंगे।

आपकी बड़ी-बड़ी शिकायतें तो मैंने सुन ली हैं और उनके बारे में जो कुछ फैसला हुआ है वह भी आपको बता दिया है। पर इसके अलावा भी आपकी जो छोटी मोटी शिकायतें होवें आप यहां के अफसरों से कहें। वे आप लोगों की सेवा के लिए ही हैं। अगर किसी वजह से वहां सुनवाई न हुई तो श्री सत्यम् भाई मेरी तरफ से आप लोगों के बीच पिछले छः माह से सेवा कर रहे हैं वे आपके खादिम हैं, पैरो हैं, वे अधिकारियों के सामने भी सिर झुकाएंगे और आपके सामने भी। लेकिन न अधिकारियों से डरेंगे और न आपसे। एक बात कह दूं। आप जो बात कहें बढ़ा-चढ़ा कर न कहें। कुछ लोग समझते हैं कि बात बढ़ा-चढ़ा कर कहने से असर ज्यादा होता है लेकिन यह ख्याल गलत है। किसान के मुंह से तो बात बढ़ा-चढ़ा कर निकलनी ही नहीं चाहिए। बाद में तहकीकात होती है और असलियत का पता चल जाता है फिर आपको जलील होना पड़ता है। इसलिए जो बात जैसी हो वैसी ही

कहनी चाहिए और अगर दो आना हो तो पौने दो आना बतानी चाहिए पर सवा दो आना नहीं।

अब मैं अधिकारियों से भी एक प्रार्थना करूंगा। जैसे मैं आप लोगों का सेवक हूं उनका भी हूं। आज एक बरस हो गया ये लोग इस तरह भटक रहे हैं, परेशान हैं। जिंदा हैं यह तो भगवान की कृपा है। यहां की खेती ये नहीं करेंगे तो कोई करनेवाला नहीं है। हमारी सरकार चाहती है कि सब मुसलमानों को ठीक से बसाया जाय। उनकी इस इच्छा को यहां के अफसर लोग पूरी कर दिखाएंगे तो पुरानी दुखदाई बातें सहज भुलाई जा सकेंगी। हिंदुस्तान के लोगों में यह एक खूबी है। वे नसीब को पहले मानते हैं और उसी पर सब कुछ छोड़ कर जो कुछ होता है उसे भुला देते हैं।

आखिर में एक बात और कह दूं। आपकी तरफ से जितनी वकालत हो सकती थी मैंने की है, और सदा करने के लिए तैयार हूं। कुरान शरीफ कहता है--

"बश्शिरिस् साबिरीन"

सब्र करनेवाले को खुशखबरी सुनाओ। इसलिए आप लोग सब्र रखिएगा आपको जरूर खुशखबरी सुनाई जाएगी।

नूह
१६-१०-४८

: ५८ :

सुधारकों की तितिक्षा

आपके गांव में मैं पहली दफा ही आया हूं। मेरा यह सार्वजनिक व्याख्यान प्रार्थना में ही हो रहा है यह अच्छी बात है। सामुदायिक प्रार्थना मनुष्य की चित्त-शुद्धि और शांति के लिए बहुत ही लाभदायक वस्तु है। मैं आप लोगों से अर्ज करूंगा कि हफ्ते में एक दफा शुक्रवार को, जो कि गांधीजी का मृत्यु-दिन है, सब लोग इकट्ठे होकर ईश्वर का स्मरण किया करें। उससे हमारे समाज की उन्नति होगी।

आप जानते हैं कि यहां गांधी-सप्ताह में कुछ भाइयों ने हरिजन-बस्ती में जाकर सफाई का काम किया था। मंदिर-प्रवेश को लेकर उनका बहिष्कार किया गया, वैसे यहां अभी तक मंदिरों में हरिजनों का प्रवेश नहीं हुआ है, फिर भी सवर्णों का बहिष्कार एक नई चीज है। सफाई करनेवाले सवर्ण हमेशा मंदिर में नियम से जाते थे। उन्हें रोका गया। उस मंदिर के नजदीक उन्होंने सत्याग्रह शुरू किया, उन्होंने फाका किया और वहीं बैठ गए। श्री गोकुलभाई भट्ट के समझाने पर उन्होंने दूध फल लेना शुरू किया। दो तीन-सप्ताह से आजतक ऐसा ही चलता रहा। जब यह बात मुझे मालूम हुई तो मैंने कहा था कि जिन भाइयों का कई बरसों से बिना दर्शन भोजन न करने का नियम था उन्हें हक था कि वे अपना आग्रह जारी रखें। मगर उससे भी बेहतर एक चीज थी

जिसे मैंने सोचा था कि वहीं जाकर समझाऊंगा।

मैं आज सत्याग्रही भाइयों से मिला और उनसे कहा कि आपने सवर्ण होते हुए हरिजनों की जो सेवा की उसका आपको यह पुरस्कार मिला——मंदिर में जाने से रोके जाने के रूप में—आपको समझना चाहिए कि आपने जो सेवा की उससे परमात्मा प्रसन्न हुआ और उसने आपको भी हरिजन की उपाधि दी। यहां हरिजनों का मंदिर में प्रवेश नहीं है। इसलिए अगर आप अकेले मंदिर में आएंगे तो अपने हरिजन भाइयों से अलग पड़ जायंगे। भगवान ऐसा नहीं चाहता, वह तो चाहता है कि आप ही सचमुच में हरि के जन बन जायं और जबतक हरिजन भाई मंदिर में न जा सकें तब तक आप भी न जायं। आप इसे भगवान का आशीर्वाद समझिए। आप ऊंचा सत्याग्रह कीजिए और जब तक हरिजनों का प्रवेश मंदिर में न हो जाए तब तक मंदिर में न जाने का निश्चय कीजिए। मैं अपना दृष्टांत देता हूं। मेरे आश्रम के पास पौनार गांव में एक मंदिर था। हरिजन वहां नहीं जा सकते थे इसलिए बरसों तक मैं भी वहां नहीं जाता था। जिस मंदिर में सबका प्रवेश नहीं हो सकता हो वहां सिर्फ पत्थर की मूर्ति रह जाती है। भगवान तो माता का हृदय रखता है, वह अपने बच्चे को दूर नहीं रख सकता। भगवान का दर्शन व उसकी आवाज सब तक पहुंचनी चाहिए। लेकिन जहां भगवान के भक्तों को मनाही होती है वहां भगवान कैसे रहेगा ? वहां तो केवल पत्थर की मूर्ति होगी। ईश्वर की कृपा से जब वह मंदिर हरिजनों के लिए खुल गया तब हम उस मंदिर में गए।

मद्रास प्रांत में तो बड़े-बड़े मंदिर हरिजनों के लिए खुल गए। रामेश्वरम् का प्रसिद्ध मंदिर खुल गया, जो एक बड़ा तीर्थस्थान है। बालाजी का मंदिर भी खुल गया, जहां दूर दूर से हजारों मारवाड़ी भक्तजन जाते हैं। मीनाक्षी का मंदिर, पंढरपुर (महाराष्ट्र) का प्रसिद्ध मंदिर और कितनों का नाम गिनावें, बहुत सारे मंदिर हरिजनों के लिए खुल गए, फिर भी धर्म का कुछ बिगड़ा नहीं, वह और भी उज्ज्वल हो गया है। मैं जानता हूं कि सारे हिंदुस्तान के मंदिर हरिजनों के लिए खुलनेवाले हैं और बीक़ानेर का यह मंदिर भी हरिजनों के लिए खुले बिना नहीं रहेगा। मैंने इन सत्याग्रही भाइयों से कहा है कि जब तक यह मंदिर हरिजनों के लिए न खुले वे वहां न जाने का निश्चय कर लें और सनातनी भाइयों के हृदय-मंदिर खोलने का धरना अपने मन में शुरू करें।

उन्होंने मेरी बात मान ली है इसलिए मैं उन्हें अपने साथ यहां ले आया हूं। अब से उनका धरना उठ गया है।

इस तरह जब समाज हमारा बहिष्कार करे तो उसे शांति और प्रेम से सहन करना चाहिए और अपना विचार नहीं छोड़ना चाहिए। हमें गुस्सा नहीं करना चाहिए और समझना चाहिए कि भगवान की कृपा होने पर ही समाज बहिष्कार करता है। ऐसा बहिष्कार भक्तों को सदा सहना पड़ा है। आज हम उन भक्तों की पूजा करते हैं। भगवान शंकराचार्य के साथ भी ऐसा हुआ है। शंकराचार्य से बढ़ कर हिंदूधर्म का भक्त और सनातनधर्म का रक्षक कौन था ?

वे मलावार के थे और नम्बूद्री जाति के ब्राह्मण थे। उन्होंने सारे भारत में घूम कर धर्म का प्रचार किया और हिमालय में समाधिस्थ हुए। उन्होंने घर की आसक्ति छोड़ी और सेवा के लिए सन्यासी हुए। उस जमाने में सन्यास लेना पाप समझा जाता था। वह पाप शंकराचार्य ने किया इसलिए उनका घर पर बहिष्कार था। वे तो घूमते रहते थे। उनकी माता घर पर अकेली रहती थी। उसके अंतिम समय में वे उसके पास पहुंचे और उसे एक स्तोत्र सुनाया। कहते हैं कि तब भगवान ने उसे दर्शन दिया। उसकी मृत्यु हुई तो उसकी लाश को उठाने के लिए कोई नहीं आया। शंकराचार्य तो ज्ञानी थे, उन्होंने कठोर बन कर तलवार से माता के शव के तीन टुकड़े किये और फिर उन्हें एक एक करके श्मशान में ले जाकर जलाया। वे दृढ़ निश्चयी थे। समाज के सामने झुके नहीं, किंतु समाज के खिलाफ कुछ नहीं किया व शांत रहे। नतीजा यह हुआ कि उनकी मृत्यु के बाद आज सारा देश और हिंदू-समाज उनकी पूजा करता है। अब तो उनकी स्मृति में ऐसा रिवाज उस जाति में पड़ गया है कि सिंदूर से शव पर तीन रेखाएं खींची जाती हैं और फिर उस शव को जलाया जाता है। मैंने अपने सत्याग्रही भाइयों को समझाया है कि समाज ऐसा बहिष्कार करे तो हमें भी संतों की तरह सहन करना चाहिए।

अब मैं सनातनी भाइयों से कुछ कहूंगा। मेरा दावा है कि मैं भी एक सनातनी हूं। वेदादि का मैं अध्ययन करता आया हूं और उनकी उत्तम शिक्षा पर चलने का नम्र प्रयत्न

करता हूं । मैं सनातनी भाइयों से कहूंगा कि धर्म की असलियत को समझकर टूटे दिलों को जोड़िए । आखिर मंदिर किसके लिए हैं ? उसकी आवश्यकता तो हम-जैसे पतितों के लिए ही है । जो "पतित पावन सीताराम" कहते हैं, और मंदिरों में हमारे हरिजन भाइयों को जाने नहीं देते, वे भगवान से भक्तों को अलग रखते हैं, और भगवान के शत्रु बन जाते हैं । इस तरह तो हिंदूधर्म मिट जायगा । हिंदूधर्म ने अद्वैत सिखाया है । इस मारवाड़ भूमि में वैष्णव भक्तों ने दयाभाव की बड़ी शिक्षा दी है । दयाभूमि में ऐसा भेदभाव न करें ।

मैं अजमेर गया था । वहां पुष्कर तीर्थ है । ये पुष्करणा ब्राह्मण वहीं के हैं । वहां पुष्करजी का मंदिर है जो हरिजनों के लिए अब खुला हुआ है । तभी मैं वहां जा सका । उन्होंने मेरे द्वारा पूजा की सारी विधि करवाई । जब उनके वहां का मंदिर खुल गया है, तो मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि इनका हृदय-मंदिर भी खोल दे ताकि सबके हृदय एक हो जायं ।

समानि व आकूतिः समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति

तुम्हारा संकल्प एक हो, तुम्हारे हृदय एक बनें, जिससे तुम्हारी संघटना अच्छी होगी, तुम्हारा भला होगा । वेद भगवान की यही आज्ञा है ।

बीकानेर
१७–१०–४८

१५

: ५६ :

अजीब घटना

कल मैंने जिस बात का जिक्र किया था उसके बारे में मुझे आज एक और भी दुख की बात सुनने को मिली है। मैंने सुना है कि जैसे कुछ सवर्ण भाई भंगी बस्ती में सफाई के लिए गए थे वैसे कुछ मुसलमान भाई भी गए थे। जैसे हिंदू-भाइयों को मंदिर में नहीं जाने दिया गया वैसे ही मुसलमान-भाइयों को मसजिद में नहीं जाने दिया। बीकानेर में मैं यह अजीब घटना सुन रहा हूं। ऐसा हिंदुस्तान के दूसरे हिस्सों में अथवा इस्लाम के इतिहास में कभी मैंने नहीं सुना। जैसे हिंदुओं ने अछूत माना वैसे मुसलमान अछूत मानने लगे और इसके परिणाम में उन्हें मसजिद में न जाने देवें तो मेरी समझ में नहीं आता कि इस्लाम में क्या रह गया। हिंदुस्तान में जहां जाता हूं वहां मुसलमानों से मिलता हूं। गुड़गांव, अलवर, भरतपुर, अजमेर व दूसरी जगहों में मुसलमानों में गया वहां उन्होंने मुझे दिल से स्वीकार किया। अजमेर में मुसलमान जिस प्रेम से मिले उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस नाते उनको भी समझाने का मैं अपना अधिकार समझता हूं। जहां तक मैं समझता हूं इस तरह उन्हें मसजिद में जाने से रोकना इस्लाम के खिलाफ है, वैसे तो यह वैदिक धर्म के भी खिलाफ है।

चूरु स्टेशन पर कुछ हरिजन भाई मिले थे। उन्होंने

कहा कि उनके वेतन की मांगें पूरी नहीं की जा रही हैं, और उन्हें दबाया जा रहा है। हरिजनों को आर्थिक दृष्टि से भी दबाया जाता है, और धार्मिक दृष्टि से अछूत माना जाता है। वे ऐसी उपयोगी समाज-सेवा करते हैं कि जिसके बिना समाज जीवित नहीं रह सकता किंतु फिर भी यदि हिंदू और मुसलमान हम सब उनका तिरस्कार करें तो मानवता कहां रह जाती है ? मैं पूछता हूं कि ये सब धर्म किस काम के लिए पैदा हुए ? धर्मों का यह काम होना चाहिए कि वे मानवता से भी ऊंची शिक्षा हमें दें। परंतु जिस काम से सामान्य मानवता भी लज्जित होती है, यदि धर्म के नाम पर ऐसा काम किया जाता है तो फिर धर्म की क्या कीमत रही ?

हमारे पूर्वजों ने गाया था कि भारत भूमि में पैदा हुए उत्तम पुरुषों से पृथिवी के सब मानवों को चरित्र-शिक्षा मिलेगी। इतनी महान् आशा उन्होंने हिंदुस्तान के बारे में रखी थी। लेकिन अगर हम मानवता से गिर जाते हैं तो हम दुनिया को क्या देनेवाले हैं और उन्हें हमसे क्या मिलनेवाला है।

दुनियाभर की बहुत सारी जमातें यहां आईं। उनको हमने प्रेम-भाव से यहां रखा और आत्मसात् कर लिया। हिंदूधर्म की यही खूबी रही है कि वह जिनके संपर्क में आया उनमें और अपने में कोई भेद नहीं रहने दिया। इतिहास कहता है कि इस तरह से सैकड़ों जातियों को वैदिक काल में ही हिंदूधर्म ने आत्मसात् कर लिया। हिंदूधर्म का एक अंग बौद्ध थे। वे सीलोन, तिब्बत, चीन, जापान आदि स्थानों पर गए। वे सब तरफ फैले।

आज ४० करोड़ लोग बौद्धधर्म के रूप में हिंदूधर्म को जानते हैं। पर उन्होंने कहीं जाकर सत्ता नहीं स्थापित की, कहीं प्रलोभन नहीं दिया, और कहीं जबरदस्ती नहीं की। हिंदुस्तान के बारे में यह कहा गया है कि उसने किसी देश पर आक्रमण नहीं किया। इतनी प्रीति, सहनशीलता और दयाभाव जिस देश में हो वह अगर मानवता से गिर जाय तो उसकी परंपरा कैसे रहेगी? हिंदुस्तान इतना विशाल देश कैसे रहा, दूसरे देश इतने छोटे-छोटे कैसे बने? इस सब का एक ही कारण है कि हिंदुस्तान ने ही मानवधर्म को अपनाया, दूसरे देशों ने नहीं। अब तो हमें स्वराज्य मिल गया। अगर उसकी शोभा और प्रभा सारी दुनिया में फैलानी है तो यहां की सब जातियों को चाहिए कि वे एक दूसरों को प्रेम से देखें, एक दूसरे का आदर करें।

मैं एक मिसाल देता हूं। शरणार्थी भाई आए तब पहले तो लोगों ने उनका स्वागत किया, लेकिन अब जनता में उनके लिए प्रतिकूल भाव पैदा हो रहे हैं। यह ठीक नहीं है। अगर हम सब एक रहें तो हिंदुस्तान को एक रख सकते हैं और भारत का संदेश सब जगह पहुंचा सकते हैं।

हमारे पूर्वजों ने पांचजन्य की बात कही है। चार तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण हो गए और पांचवें जन में जितने भी लोग दुनिया में बचे रह गए वे हैं। इस तरह से पंच-जनों को संदेश सुनाना हिंदुस्तान का ध्येय रह गया गया है। अगर उस ध्येय को जारी रखना है तो सबको एक हो जाना चाहिए, आपस में सब भेद मिटाने चाहिए और

आपस में मिल जाना चाहिए। भगवान कृष्ण ने अपने विश्व-रूप में हजारों आंखें नाक हाथ बताए हैं लेकिन हृदय एक था। हमारे हाथ करोड़ों रहें लेकिन सबके हृदय एक रहें। मैं हृदय से ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह हमारी मदद करे कि हम सारे भेदभाव भूल कर भगवान के सामने खड़े होने का निश्चय करें। ये छोटे-छोटे भेद शरीरपर अवलंबित हैं। शरीर तो जानेवाला है। वह पंच महाभूतों का बना हुआ है। पंच महाभूत अलग-अलग होते हैं फिर भी शरीर तो एक ही है। अगर हम इतना समझ कर भेदभाव भुलावें तो हिंदुस्तान का वैभव बढ़ेगा।

बीकानेर
१८—१०—४८

: ६० :

वर्ण-व्यवस्था का रहस्य

आज तो मैंने यह सोचा है कि आपके सामने थोड़ी सी बात अपनी समाज-रचना की रख दूं क्योंकि मैं देख रहा हूं कि यहां बीकानेर का वातावरण काफी पिछड़ा हुआ है। आज बाहर जो चीजें चल रही हैं वे यहां काफी अपरिचित सी मालूम होती हैं। हिंदूधर्म में जो वर्णव्यवस्था की गई थी उसका उद्देश्य मैं आप के सामने रख देना चाहता हूं। हम जानते हैं कि वर्ण-व्यवस्था हिंदूधर्म में बहुत प्राचीन काल

से है, लेकिन वह अनादि नहीं है। आहिस्ता-आहिस्ता बनी है। उपनिषदों में इसका इतिहास मिलता है। वहां आया है कि आरंभ में केवल एक ही वर्ण—ब्राह्मण था अर्थात् समाज वर्णों में विभाजित नहीं था। सब काम एक ही व्यक्ति जो ब्राह्मण कहलाता था, किया करता था। लेकिन जब उससे अकेले काम न चला तो मदद के लिए एक दूसरे वर्ण—क्षत्रिय का निर्माण हुआ। आगे अनुभव से मालूम हुआ कि दो वर्णों से भी सारा काम नहीं हो पाता, तो वैश्य का वर्ण बना; और जब इनसे भी सारा काम न बन पाया तो चौथा शूद्रों का वर्ण बना। शूद्र के लिए उपनिषद् में वचन आया है कि वह सबका पोषण करनेवाला है। "शौद्रं वर्णं असृजत पूषणम्" यानी पोषण करनेवाला। इस चीज को समझाने के लिए देवों का दृष्टांत लेकर उनके भी चार वर्णों का वर्णन किया गया है, जिसमें अग्नि को ब्राह्मण, इन्द्र को क्षत्रिय, रुद्रादि संघ करके रहते हैं इसलिए उन्हें वैश्य और धरती, क्योंकि वह सबका पोषण करती है, उसे शूद्र कहा गया है।

इस दृष्टांत से आप समझ लेंगे कि शूद्रों के प्रति उस समय अनादर नहीं बल्कि अत्यंत उच्च भावना थी। धरती को हम माता मानते हैं इसलिए पर्याय से शूद्रों के लिए माता का ही शब्द प्रयुक्त हुआ है। बृहदारण्य में भी इस विषय को समझाते हुए बताया है कि समाज में कोई ऊंच-नीच नहीं हैं, सब लोग समाज के सेवक हैं। गीता में अगर यह होता कि कोई ऊंच और कोई नीच समझा जाय, तो गीता जैसी आज बनी है न बनती। गीता में बताया है कि हरेक वर्ण अपना-अपना काम

करे और निष्काम भाव से करे, ताकि मोक्ष पा सके। किसी काम को गीता ने छोटा या बड़ा नहीं माना है। मोक्ष के लिए हृदय का विशुद्ध होना जरूरी है। ब्राह्मण के पास हृदय शुद्धि के लिए बुद्धि है, वैश्य, लोक-सेवा द्वारा उसी तरह मोक्ष का समानाधिकारी बन जाता है। अगर एक भंगी सफाई का काम प्रामाणिकता से करता है, उस काम में उसका भगवान की पूजा का भाव रहता है तो वह भी मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। अर्थात् शुद्ध हृदय से और निष्काम भाव से काम करनेवाला ब्राह्मण हो या शूद्र, या अन्य किसी वर्ण का, मोक्ष के सब समान अधिकारी हैं। इतना ही नहीं अगर ब्राह्मण अपना काम ठीक नहीं करता है और भंगी अपना काम ठीक-ठीक करता है तो वह प्रामाणिक भंगी ब्राह्मण की अपेक्षा उच्च माना गया है। भागवत में भी लिखा है कि

विप्राद् द्वि षड् गुण-युताद् अरविंद-नाभ-पादारविंद-विमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।

जिस ब्राह्मण में अध्ययन अध्यापन आदि के बहुत से गुण होते हुए भी अगर परमात्मा की भक्ति नहीं है तो उससे चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। सबका सार यही है कि वर्ण-योजना में ऊंच नीच का भाव नहीं था। परंतु धीरे-धीरे इस व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण और क्षत्रिय तो ऊंच रह गए और बाकी सब नीच। उनमें भी वैश्यों ने धीरे-धीरे खेती का काम छोड़ दिया और वह भी शूद्रों पर ही आ पड़ा।

इस तरह शूद्र इतने महान बन गए कि खेती, गोसेवा,

सफाई आदि सब काम उन पर ही आ गये; बाकी के सब लोग अलग रह गए। फल यह हुआ कि प्रत्यक्ष कारीगरी या शरीर का काम करनेवाले नीच समझे जाने लगे। जबसे यह होने लगा दिन-ब-दिन हिंदूधर्म का भी पतन होने लगा; हजारों लोग हिंदूधर्म को छोड़ गए और देश गुलाम बन गया।

रोमन साम्राज्य का पतन भी इसीलिए हुआ था कि वहां जो लोग हाथों से काम करते थे वे नीच माने जाने लगे थे। यही बात हिंदुस्तान में भी हुई। हिंदुस्तान से कारीगरी का नाश और विज्ञान का लोप तब ही से हुआ, नहीं तो प्राचीन काल में यहां विज्ञान की खूब प्रगति हो चुकी थी। विज्ञान तभी बढ़ता है जब बुद्धिमान लोग प्रत्यक्ष काम करते हैं, उद्योग करते हैं। यहां तो ब्राह्मणों तथा अन्य उच्च वर्गीयों ने काम करना छोड़ दिया था इसलिए कारीगरी के काम में बुद्धि का प्रवेश बंद हो गया इसलिए यहां विज्ञान प्राचीन काल में जितना विकसित हुआ था, बस उतना ही होकर रह गया।

हिंदुस्तान में स्त्रियों की जैसी प्रतिष्ठा थी वैसी और कहीं नहीं थी परंतु वे भी हीन समझी जाने लगीं क्योंकि उन्हें रसोई आदि मजदूरी के काम करने पड़ते थे। एक जमाना था जब मनु ने लिखा था कि गुरु से पिता व पिता से माता अनेक गुना महान होती है। ऐसी महान उस स्त्री-जाति को भी हीन समझा जाने लगा।

इस सबका मतलब यही है कि जब से शरीर परिश्रम को नीच समझा गया तब से समाज-व्यवस्था बिगड़ गई, अर्थ-व्यवस्था बिगड़ गई, स्वराज्य का लोप हुआ, विज्ञान का लोप

हुआ और धर्म का भी लोप हो गया।

अगर आप इस बात को समझ गए हैं तो आप खुश होंगे कि यहां के कार्यकता भंगी-बस्ती में जाकर सफाई करते हैं। जैपुर कांग्रेस में आप देखेंगे कि आपके प्रांत के अच्छे-से-अच्छे नेता इस काम को कर रहे हैं। फैजपुर कांग्रेस में सफाई का काम वहां के प्रतिष्ठित लोगों ने ही अपने हाथ में लिया था। अर्थात् समाज के अच्छे लोग आज इस काम को अभिमान और गर्व के साथ करने लगे हैं। सब जगह ऐसा होगा तो देश भी आगे बढेगा वरना उन्नति की आशा ही नहीं रखनी चाहिए।

इसलिए हमें अब इस काम को उठाना है। उसमें सुधार भी करना है। आज का भंगी-काम इतना गंदा है कि मैं भी उसे आसानी से नहीं कर सकता। मैंने जो भंगी-काम किया है वह देहातों में किया है। देहातों में इतनी गंदगी नहीं होती। हम इस काम में पड़ेंगे तो इसमें सुधार हो सकेगा। ब्राह्मणों को ऐसे काम नहीं करने चाहिए यह खयाल गलत है। इससे तो वर्णधर्म का अज्ञान ही प्रगट होता है। ब्राह्मणों का काम विद्या सीखना और सिखाना है; यानी देश में जो उद्योग गिर गए हों उनको पुनर्जीवित करने के लिए यह जरूरी है कि ब्राह्मण स्वयं उनका शिक्षण लें और औरों को दें। द्रोणाचार्य स्वयं क्षत्रिय नहीं थे फिर भी उन्होंने धनुर्विद्या सीखी और सिखाई। इस तरह देश में जो धंधा गिर गया हो या बिगड़ गया हो, ब्राह्मणों का काम है कि वे उसे उठावें। अगर बुनाई का काम बिगड़ गया है, चमड़े का काम नष्ट हो रहा है या भंगी

काम को दुरुस्त करने की आवश्यकता है तो इन सबको अच्छी तरह करने के लिए ब्राह्मणों का काम है कि वे स्वयं उसमें प्रवेश करें। यह सब मैंने विस्तार पूर्वक इसलिए बताया है कि अगर हिंदू-धर्म का भला होना है तो इस पर गंभीरता से विचार करना होगा।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस बहुत सबेरे उठकर कई दफा बस्ती के पाखाने साफ कर दिया करते। पूछने पर बताते कि अहंकार को कम करने के लिए, नम्र होने के लिए मैं ऐसा करता हूं—यानी भंगी-काम को वे एक साधना समझते थे। गांधीजी ने भी इसे किया। अनेक महापुरुष इस तरह करते आए हैं और इसीलिए धर्म उज्ज्वल रहा है। हिंदू-समाज गीताकार कृष्ण को उतना नहीं जानता जितना गोपाल कृष्ण को। गोपाल कृष्ण का नाम लेते ही गायों की सेवा करनेवाले कृष्ण का चित्र आंखों के सामने खड़ा हो जाता है। हिंदू-धर्म के महापुरुषों ने इसी तरह सदा सेवा का काम किया है और इसीलिए हिंदू-धर्म उज्ज्वल रहा है।

बीकानेर
१६–१०–४८

: ६१ :

दोहरी क्रांति !

मेरा आज यहां का यह आखिरी दिन है। मैं आज

यहां से जोधपुर जा रहा हूं। इसलिए एक दो बातें जो मुझे कहनी थीं मैं आज आप लोगों से कहनेवाला हूं। कुछ तो मैं पिछले दो-तीन दिनों में कहता रहा हूं, उसकी पूर्ति में ही आज का यह व्याख्यान है। मैं यहां विद्यार्थियों के बुलाने पर आया था। इसलिए शुरू में विद्यार्थियों को ध्यान में रख कर बोलूंगा। वैसे तो वह बात सब के लिए लागू होती है और मुझे उसके बारे में सब से आशा भी है।

विद्यार्थी विद्या तो सीखते हैं, लेकिन उनकी विद्या तेजस्वी नहीं बनती। बहुत सारे विद्यार्थी यह नहीं जानते कि उन्हें जिंदगी में क्या करना है। जो विद्या सीखते हैं उससे जीवन की समस्या हल नहीं कर पाते। मैं उम्मीद करता हूं कि विद्या का यह पुराना तरीका जाकर अब नये तरीके से काम शुरू होगा। इसमें जितनी देरी होगी उतना ही देश पिछड़ेगा। जब राज्य नया आ गया तो शिक्षा पद्धति पुरानी हर्गिज नहीं चल सकती। किंतु मुझे तो विद्यार्थियों से ही एक बात कहनी है। विद्या के साथ जब कोई क्रिया रहती है, तब वह विद्या तेजस्वी बनती है नहीं तो जो भी विद्या आती है वह पराक्रम-शाली और तेजस्वी नहीं होती। वेदों ने कहा है 'क्रियावान् एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः' याने आत्मवेत्ताओं में भी क्रियावान आत्मवेत्ता श्रेष्ठ होता है। अर्थात् आत्म विद्याको भी उन्होंने क्रिया की कसौटी पर कसा है। जो आत्मविद्या क्रिया की कसौटी पर नहीं उतरेगी वह आत्मविद्या ही नहीं है। जब आत्मविद्या तक का यह हाल है तो बाकी की सर्वसामान्य विद्या तो निरर्थक, निस्तेज और पराक्रम-हीन ही हुई।

विद्यार्थी महसूस करें कि कालेज में वे जो विद्या पढ़ते हैं वह निरर्थक है और कुछ-न-कुछ शरीर-परिश्रम का कार्य शुरू कर दें जिससे देश की पैदावार भी बढ़े। ऐसा काम सूत कातने का हो सकता है जिसे सब लोग आसानी से कर सकते हैं। बात ऐसी है कि हिंदुस्तान जैसे गरीब देश में जहां खेती के लिए मुश्किल से पौन एकड़ जमीन फी आदमी के हिस्से में आती है, वहां देहात के लोग अगर कपड़े के बारे में स्वावलंबी नहीं बनेंगे तो यह गुलामी की निशानी होगी। अगर हिंदुस्तान का किसान स्वतंत्र नहीं है, शहरों पर या तो दूसरों पर अवलंबित रहता है तो उसका जीवन सुखी नहीं हो सकता क्योंकि खेत के सिवा उसके पास रोटी का और कुछ साधन नहीं रहता। उसका जीवन पराधीन रहेगा। यह पराधीनता मिटानी हो तो उनमें यह भावना पैदा करनी होगी कि वे जो कच्चा माल पैदा करें, बाहर न भेजें। तभी उनका जीवन सुखी हो सकता है। लेकिन यह कौन करे ? विद्यार्थियों को इस काम के लिए आगे आना चाहिए। विद्यार्थी पुरुषार्थी बनेंगे, रोज कुछ शरीर-परिश्रम करेंगे, अपने सूत का कपड़ा पहनेंगे, देश की पैदावार बढ़ाएंगे तो उनके बदन पर कर्मयोग की निशानी दीखने लगेगी। मुख उज्ज्वल रहेगा। जिस चीज का चौबीस घंटे और उम्र भर हम उपयोग करते हैं उसके लिए बाहर की मिलों पर आधार रखकर हाथ पर हाथ रखे घर बैठे रहना लज्जाजनक है। अगर हम मिलों का कपड़ा पहनेंगे तो राज भी मिलवालों का, श्रीमानों का, सरमाएदारों का ही चलेगा। हमें आर्थिक स्वराज्य लाना

है और यह तब तक नहीं हो सकेगा जब तक सरमाएदारों के हाथ से अर्थव्यवस्था निकल नहीं जाती। केवल पोलिटिकल स्वराज्य से काम नहीं चलेगा। विद्यार्थियों को छुट्टियों में देहातों में पहुंच जाना चाहिए, किसानों को समझाना चाहिए, उन्हें बताना चाहिए कि आप लोगों के पास कपास होता है इसलिए मिल का कपड़ा आपको सस्ता मिले, मुफ्त मिले या ऊपर से कुछ दक्षिणा भी मिले तो भी उसे नहीं लेना चाहिए। अगर आप किसान का राज्य चाहते हैं तो आपको यह सब करना होगा। जैसा कि जवाहरलाल जी ने कहा है अगर खद्दर स्वतंत्रता की निशानी है तो इसे किसान के बदन पर लाकर दिखाना होगा। मैं आपसे पूछता हूं, अनेकों ने अलग-अलग उपासनाएं चलाई हैं, परंतु अगर आप सब एक राष्ट्रीय उपासना शुरू कर दें तो उससे देश में कितना सुंदर वातावरण निर्माण हो सकता है। अगर भोजन से पहले मां अपने बच्चे से पूछे कि बेटा तुमने आज कोई काम किया है, और अगर बच्चे ने सूत कात लिया है या इसी तरह का और कोई पैदायशी काम किया है तो उसे भी देश के लिए कुछ करने का सुख मिल सकता है। आर्थिक क्रांति के लिए हमें यह सब करना होगा।

राजनैतिक क्रांति के बाद जैसे आर्थिक क्रांति की आवश्यकता होती है वैसे ही सामाजिक सुधार की भी जरूरत रहती है। राष्ट्र उसके बिना आगे नहीं बढ़ सकता। दुनिया में और कहीं भी इतना बड़ा देश नहीं है जो इस तरह एक रहा हो। और देश हैं लेकिन छोटे-छोटे हैं। छोटे-छोटे देश आसानी से स्वतंत्र रह सकते हैं। लेकिन तीस कोटि लोग आजाद

और एक रहें यह आसान बात नहीं। सामाजिक क्रांति से यह हो सकता है क्योंकि वह लोगों के दिलों को एक कर सकती है। पिछले दो दिनों में यही बात आप लोगों से कहता रहा हूं। अगर इस ओर हमने ध्यान नहीं दिया तो हमारा यह स्वराज्य हमारे पारस्परिक द्वेषभाव को बढ़ानेवाला साबित हो सकता है।

इस तरह मैंने दो बातें आपको बताईं, आर्थिक क्रांति की और सामाजिक सुधार की। चार दिन मैं आप लोगों के बीच रहा। मैंने प्रेम का अनुभव किया। कुछ कठोर वचन भी मैंने कहे होंगे। लेकिन आपको अपनेसे भिन्न समझकर नहीं कहे। हरिजन बस्ती में जानेवाले या वहां सिर्फ पानी पीनेवाले को मंदिर में जाने से रोकना कितना भयंकर है, और मुझे उससे कितना दुख हुआ है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। मैं मानता हूं कि रोकनेवालों को धर्मबुद्धि नहीं है, और इसलिए मुझे उन पर दया आती है। पर वे सब मेरे आत्मस्वरूप हैं और इसलिए मैंने जो कुछ कहा अपने से ही कहा है।

बीकानेर

२०-१०-४८

: ६२ :

स्त्रियों से अपेक्षा

राजस्थान के इतिहास में जैसे हम अनेक बहादुर पुरुषों

का जिक्र सुनते हैं वैसे ही बहादुर स्त्रियों का भी सुनते हैं। स्त्रियों ने अपने ढंग की बहादुरी दिखाई है, और पुरुषों ने अपने ढंग की। लेकिन बहादुरी का जो नमूना यहां रखा है वह अद्भुत है। हिंदुस्तान के ही नहीं दुनिया के इतिहास में भी ऐसी मिसालें कम हैं।

दुनिया के विचारक सोचते हैं कि दुनिया में आजकल जो पारस्परिक संघर्ष चल रहा है उसको मिटाना ही चाहिए। सारी दुनिया को एक करना चाहिए। जैसे एक कुटुंब में परस्पर सहकार से रहते हैं, वैसे ही दुनिया का काम भी चलना चाहिए। सब विचारक इसी तरह सोचते हैं। विचारकों को जो चीज आज स्पष्ट दीखती है दुनिया उस पर कल अमल करती है। विचारक दृष्टिमान होते हैं इसलिए पहले ही देख लेते हैं। ऐसे कार्यक्रम में स्त्रियां पुरुषों की बराबरी में हिस्सा ले सकती हैं क्योंकि उसमें आत्मशक्ति का सवाल है। इस-लिए स्त्री-पुरुष भेद ही मिट जाता है।

हमने इतिहास में देखा है कि जनक महाराज सुलभा जैसी स्त्री के पास ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहुंचते हैं। और भी ऐसे कुछ उदाहरण मिलते हैं। आगे जाकर तो बालकों को मां के द्वारा ब्रह्मविद्या मिलनेवाली है। मदालसा का उदाहरण हम जानते हैं कि उसने दूध पिलाते-पिलाते बालक को आत्मज्ञान करा दिया। हमारी सारी बहनों को भी यही काम करना है। और उसी के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

उदयपुर
२६-१०-४८

: ६३ :

अहिंसा वैज्ञानिक है

यहां शिविर के कार्यक्रम में एक आध घंटा कताई भी रखी गई है; मैं वहां गया था। वहां जो कुछ देखा उससे मुझे खुशी नहीं हुई। वहां पूनी खादी भंडार से आती है। मैं इसे गलत तरीका मानता हूं। पूनी हमें खुद बनानी चाहिए। हमें स्वावलंबी बनना है और किसान को भी स्वावलंबन सिखाना है।

मैंने यह भी देखा कि पूनी रद्दी थी। अच्छी तरह रखी भी नहीं गई थी। टीका करने के खयाल से मैं यह नहीं कह रहा हूं। हिंदुस्तान की हालत ही ऐसी है। हिंदुस्तान में शिक्षितों और अशिक्षितों के बीच एक दीवार सी खड़ी हो गई है। अशिक्षित लोगों को अपनी बुद्धि का विकास करने का मौका नहीं मिलता। शिक्षित लोग काम नहीं करते। थोड़ी विद्या पढ़ पाते हैं और वह भी बिना परिश्रम दूसरों को लूटने की कला में प्रवीण करनेवाली। शिक्षित वर्गों में न तो कारीगरी है और न शरीर-परिश्रम की निष्ठा। जो भी औजार मिला उससे किसी तरह सूत कात लिया जाय तो काम हो गया, लोगों का कुछ ऐसा ख्याल हो गया-सा दीखता है। मुझे कहना चाहिए कि इससे खद्दर के मूल सिद्धांत को ही हानि पहुंची है।

खद्दर तो मिलों के बावजूद आई है और वह मिलों के विरोध में खड़ी है। मिलें पूंजीवादी चलाते हैं और चंद शहरों

में खड़ी हैं। अहमदाबाद और बंबई की मिलों में तीन-चौथाई कपड़ा तैयार होता है और सारे देहातों में जाता है। इस तरह देहातों को गुलाम बनाने का काम मिल ने किया है। कंट्रोल उठने पर मिलवालों ने गरीबों का कोई खयाल नहीं किया ओर करोड़ों रुपए कमा लिए। मिलों की उत्पत्ति देहातों को लूटने के लिए हुई है। यहांकी कारीगरी का जो खात्मा हुआ उसके दुखद इतिहास में मिलों का हाथ रहा है। इसलिए देहातों की सेवा मिलों द्वारा हो सकेगी यह मानना गलत है।

देहातों की हालत ऐसी ही है कि किसान लोग कपास भी ठीक तरह चुनना नहीं जानते। कपास जमीन पर गिर जाती है। उसमें पत्ती और कचरा लग जाता है। शायद वे उसे वजन बढ़ने का साधन समझते हों फिर यह कपास मिल में जाता है और वहां इसका कपड़ा बनता है। कपास का भाव भी किसान के हाथ में नहीं। वह अमरीका के हाथ में है। इस गुलामी से किसान को मुक्त होना है। उसको कपड़ों के बारे में स्वावलंबी बन जाना चाहिए। यह तो तभी हो सकता है जब चर्खा वैज्ञानिक ढंग से चलाया जाय। इस जमाने में अगर चर्खा चलाते हैं और उसे क्रांति का प्रतीक मानते हैं तो उसके बारे में पूरा ज्ञान हासिल करना चाहिए। शिक्षण भी उद्योग के द्वारा दिया जाना चाहिए और उसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि रखनी चाहिए।

हम ग्रामोद्योग और खादी की बात करत हैं तो लोग समझते हैं कि हम विज्ञान नहीं चाहते। यह गलत सवाल

है। हम तो जीवन के लिए विज्ञान का अधिक-से-अधिक उपयोग करना चाहते हैं। हम जो अहिंसा का नाम लेते हैं उसका कारण यही है कि हम वैज्ञानिक हैं और हम जानते हैं कि विज्ञान का जीवन में ऊंचा स्थान है। हम यह तो जानते हैं कि अगर विज्ञान के साथ हिंसा को जोड़ देते हैं तो मनुष्य जाति का खात्मा ही होनेवाला है। विज्ञान को हमें आगे बढ़ाना है इसीलिए हम अहिंसा का आग्रह रखते हैं। हमारा चर्खा उन सब वादों का जो गरीब किसान के खिलाफ खड़े हैं, विरोध करता है। अगर चर्खा चलानेवाले ऐसी हिम्मत नहीं रखते और वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा नहीं सोचते तो चर्खा चलाया ही क्यों जाय।

मेवाड़ ऐसा मुल्क नहीं है कि व्यापारी बाहर से संपत्ति लाकर इसको श्रीमान् बना सकें। यहां के देहात ही यहां का आधार है इसलिए नागरिकों को चाहिए कि देहातों की ओर ध्यान दें। शहर और देहात में विरोध नहीं है। देहात में जो कच्चा माल होता है उसका पक्का माल भी देहात में ही तैयार होना चाहिए। जीवन की प्राथमिक अवस्थाएं देहात ही पूरी करेगा; दोयम शहर पूरी करेगा। इस तरह ग्रामीणों और नागरिकों का सहकार चलेगा तो खुशी होगी। मेवाड़ के सुखी होने से हिंदुस्तान सुखी होगा।

उदयपुर

१६-१०-४८

: ६४ :

सुंदर-जयंती

आप लोगों ने मुझे बुलाया और मैं आ भी गया। पर अक्सर ऐसे समाज में कम जाता हूं। कम क्यों जाता हूं और यहां क्यों आ गया इसका कारण है। कारण यह कि इस तरह के जो संप्रदाय होते हैं वहां कुछ-न-कुछ संकुचितता आ ही जाती है। जैसा कि हमने अभी सुना है, दादूजी की इच्छा नहीं थी कि संप्रदाय बने। परंतु वह बन गया। अगर बन सकता है तो तोड़ा भी जा सकता है। तोड़ना ज्ञान-परंपरा को नहीं बल्कि संकुचित अर्थवाले संप्रदाय को है। संप्रदाय का एक उच्च अर्थ यह है कि जो ज्ञान हमें गुरु से मिला है वह हम सबको दें। इस अर्थ में, संप्रदाय चलेगा, किंतु गुरु के नाम से नहीं। गुरु को अगर हमने देहरूप माना तो हमने गुरु से ज्ञान नहीं, अज्ञान ही पाया। गुरु ने तो समझाया है कि हम देहरूप नहीं, आत्मरूप हैं। इसलिए गुरु के नाम से संप्रदाय नहीं बन सकता। लेकिन जब बन ही गया है तो क्या किया जाय ? मैं सलाह दूंगा कि गुरु का नाम बाहर प्रगट करने की जरूरत नहीं। उसे मन में रखें, और बिना किसी नाम के, लेकिन केवल बातों से नहीं कृति से, दूध में जैसे शक्कर घुल-मिल जाती है, वैसे, समाज में घुलमिल जाएं। पीनेवाला यह नहीं कहता कि मैं दूध शक्कर पी रहा हूं; नाम वह दूध का ही लेता है, पर शक्कर भी अपना काम करती ही है। अगर हममें शक्कर

का गुण है तो हम समाज में ऐसे विलीन हो जावेंगे जैसे समुद्र में नदी या सिंधु में बिंदु। सिंधु में विलीन होने पर बिंदु स्वयं ही सिंधु हो जाता है, बिंदु नहीं रहता।

यूक्लिडो का सिद्धांत हम यूक्लिड के नाम से नहीं, सिद्धांत के नाम से ही चलाते हैं। इसलिए संप्रदायों को तोड़ने का यही उत्तम तरीका है कि गुरु की ज्ञान-परंपरा चलाई जाय, नाम नहीं। अगर वह ज्ञान हमारा नहीं हो गया है तो वह हमें किसीको देना भी नहीं है। किंतु अगर वह ज्ञान हम में रच गया है तो वह हमारा ही हो गया है

मैं अक्सर ऐसे उत्सवों में क्यों नहीं जाता इसका कारण मैंने बताया। अब यहां क्यों आया यह भी बता दूं। सुंदर-दास जी केवल दादू-पंथ वालों के ही नहीं हैं। 'रहो या विनसो देह' जिनकी ऐसी व्यापक और अनासक्त बुद्धि थी उन्हीं के आकर्षण से मैं यहां आया हूं। सुंदरदास जी एक विचार, एक आदर्श दे गए हैं। वह विचार, वह आदर्श जितना आपका है, उतना ही मेरा भी है। उस विचार से सहानुभूति रखने के नाते भी मैं यहां आ गया हूं।

अब प्रश्न यह है कि हमें करना क्या है? सुंदरदासजी की जयंती तो हो चुकी। उन्होंने जय हासिल कर ली। हम क्या करें? चंद लोग इकट्ठा होकर कुछ तमाशा करें? तमाशा तो बहुत किया जा सकता है। हमें तो सुंदरदासजी के विचार समाज को देने चाहिए।

आप देखते हैं कि स्वराज्य मिल गया है, किंतु उस की छवि, उसकी छाया और उसका आनंद तो कहीं नहीं है!

कारण यह है कि हमारा स्वराज्य तो वैसा ही होगा जैसा हमारा 'स्व' होगा। इसलिए यदि स्वराज्य का आनंद लूटना है तो "स्व" को परिशुद्ध करने की जरूरत है। लेकिन लोगों को "स्व" की फिक्र नहीं, राज्य की फिक्र है। इतनी बड़ी अहिंसा की लड़ाई के बाद भी देश में आज कितना झूठ चलता है। जिस राष्ट्र का व्यापार असत्य पर चलता है, उसका शील खत्म हुआ समझना चाहिए। सुंदरदासजी ने इसी शील को संवारने की बात कही है।

उन्होंने जिस तरह शील के बारे में कहा है, संतोष के बारे में भी कहा है। हमें समाज से उतना ही लेना चाहिए, जितना शरीर धारण के लिए आवश्यक है। पर आजकल कोशिश तो दूसरों को लूटने की ही चलती है। लूटनेवाला लूट में सफल होने पर भगवान की कृपा महसूस करता है और सत्यनारायण की कथा भी करवाता है। भगवान् कोई डिस्ट्रिक्ट मैजिस्टेट तो नहीं है जो उसे खुश करने की ऐसी कोशिश की जाय। जहां भगवान की प्रसन्नता का नाप पैसे में होता है, वहां का राष्ट्र कितना गिर गया है, हमें ही यह सोचना चाहिए। ये भक्तिमान् लोग ऐसा मानते हैं कि भगवान को खुश करने से भोग मिलेगा। ऐसे बुद्धिमानों से तो नास्तिक ही अच्छे। आजकल के युवकों के बारे में यह शिकायत रहती है कि वे भगवान् को नहीं मानते। इसकी जिम्मेदारी तो भक्तिमार्गीयों पर है, जिन्होंने भगवान की कीमत कम ही नहीं उलटकर रख दी है।

श्रीमान् समझते आए हैं कि वे भक्तिमार्ग का काफी प्रचार

करते हैं। आरती और प्रसाद के ठाट-बाट से वह यह दिखाते हैं कि भगवान् उन पर प्रसन्न हुआ है। वे लक्ष्मीपति के रूप में ही विष्णु को पहचानते हैं। विष्णु अगर कल विरक्त हो जाय और लक्ष्मी को त्याग दे तो इन्हें फिर विष्णु की आवश्यकता नहीं।

इसलिए सुंदरदास जी ने जो संतोष की बात कही है उसपर अमल करना चाहिए। वेदों में कहा गया है "कृषिमित् कृषस्व। वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः"। खेती में धन ज्यादा शायद न मिले, कम मिले। पर वही विष्णु की सच्ची लक्ष्मी है। लक्ष्मी तो मेहनत करने से पैदा होती है। ऐसी मेहनत मजदूरी से जो पैदा हो उसीसे संतोष मानना चाहिए। यही सुंदरदास जी ने गाया है।

एक बात और है, हरि नाम की। हरिनाम तो एक संकल्प है। संकल्प का बल महान होता है। संकल्प द्वारा ही आत्मा की अनुभूति होती है। "प्राये प्राये जिगीवांसः स्याम" जिसको अपने संकल्प का बल है उसके कोष में हार का शब्द ही नहीं है। उसकी हमेशा जीत ही रहती है। 'मैं जो चाहूंगा वही मेरे लिए होगा', यह बल संकल्प में होता है। वह रोना जानता ही नहीं। आपत्ति भी उसके लिए कसौटी होती है, संपत्ति भी। दुख-सुख दोनों भाई हैं। लेना हो तो दोनों और छोड़ना भी हो तो दोनों ही। खतरे में पड़ने-वाले मित्र को हम सावधान करते हैं। सुख में पड़े हुए मित्र को भी इसी तरह सावधान करने की जरूरत है। गाड़ी को उतार और चढ़ाव दोनों जगह धोखा है; धोखा तो समतल

भूमि पर ही नहीं होता। हमारा जीवन-शकट भी समतल पर चलना चाहिए। हरि नाम में ऐसी शक्ति है। इसीलिए संतों ने कहा है कि शुभ नाम का प्रचार करो। 'सोहं' बोलो। देह में दोष भी हो सकते हैं; परंतु चरखे को दुरुस्त करने के लिए जरूरत पड़ने पर जैसे हम बढ़ई की मदद ले लेते हैं, उसी तरह देहरूपी चरखे को दुरुस्त करने के लिए संतों की मदद मैं ले लूंगा। परंतु मैं पहचानूंगा कि मैं वह हूं जिसमें कोई दोष नहीं। शरीर की कैसी भी बुरी दशा हो मैं बुरा नहीं हो सकता। यह सब समझाने की शक्ति हरि नाम में है। वह कहता है कि हम अविच्छिन्न हैं, अखंड हैं।

बस शील, संतोष और हरि नाम को समझो। शक्कर की तरह समाज में घुलमिल जाओ, गुरु का नाम छोड़ो केवल भगवान् का नाम चलाओ।

नारायणा, (जयपुर)
९-११-४८

: ६५ :

नित्य नई तालीम

मैं यहां इससे जल्दी आना चाहता था। लेकिन वैसी कोशिश करने पर भी नहीं आ सका। अब शिविर समाप्त होने के समय आ रहा हूं। यहां आने की मुझे इसलिए इच्छा

थी कि यह एक अखिल भारतीय दर्शन है। वैसे तो चूंकि आजकल मैं हिंदुस्तान में घूमता रहता हूं, एक दूसरी तरह का भारतीय दर्शन पाता हूं। लेकिन यहां तो हिंदुस्तान का नमक है, जिससे सारे हिंदुस्तान का स्वाद बढ़ने की आशा है।

आप लोग जो यहां आए हैं, बरसों से खादी का काम करते हैं। कुछ कार्यकर्ता तो दस-पंद्रह बरस पुराने काम करनेवाले हैं। कुछ नए भी हैं। काम करनेवालों को, अगर काम ठीक तरीके से किया जाय तो उसमें से ही विचार सूझते रहते हैं, किंतु बुद्धि-पूर्वक ठीक काम न करने से वे जड़ बन जाते हैं। ठीक तरीके से काम करते हुए भी ऐसी जरूरत पड़ सकती है कि कुछ समय के लिए काम से अलग होना पड़े, ताकि स्वतंत्र विचार प्राप्त करने की कोशिश की जा सके। मैं कार्यकर्ताओं से हमेशा कहता हूं कि दिनभर में एक घंटा और सालभर में एक महीना काम से अलग रहो, और हो सके तो मन से भी बिलकुल अलग रहो। कुछ स्वाध्याय करो, चर्चा करो जिससे नई स्फूर्ति मिल सके और अपने काम में कुछ त्रुटि हो तो वह दूर हो सके। इस तरह काम करनेवाले चंद कार्यकर्ता हैं भी। वे नित नया दर्शन पाते हैं। वे जैसे-जैसे वृद्ध होते जाते हैं, मजबूत भी होते जाते हैं। मैं इसे नित्य नई तालीम कहता हूं। नई तालीम तो आप जानते ही हैं। नित्य नई यानी कल जो कुछ सुना या जाना उससे आज कुछ नया सुना और जाना। कल जहां थे उससे आज और आगे बढ़े। इससे बुद्धि में ताजगी रहती है। हम बदलती हुई परिस्थिति के लिए तैयार रहते हैं। इतना ही नहीं जो परिस्थिति आने-

वाली है उसकी हमें आगाही भी रहती है। अक्सर ऐसा होता है कि मनुष्य अपने पुराने ज्ञान के आधार पर काम शुरू कर देता है और अपने उस पुराने ज्ञान में ही तृप्त रहता है। नया ज्ञान हासिल करने का उत्साह उसमें नहीं रहता। ऐसा नहीं होना चाहिए। ज्ञानप्राप्ति के लिए हममें बच्चे की तरह उत्सुकता होनी चाहिए। जिनकी नजर पिछले अनेक जन्मों की तरफ है वे जानते हैं कि बच्चा भी बूढ़ा होता है। और जैसे बच्चा बूढ़ा होता है बूढ़ा भी बच्चा होता है। क्योंकि उसने जो ज्ञान हासिल किया है वह संपूर्ण तो नहीं है। वह तो बहुत छोटा अंश है, जो पूर्ण के मुकाबले में शून्य है। हासिल करने को दुनिया में बहुत ज्ञान पड़ा है। इसलिए नित नया ज्ञान हासिल करना कार्यकर्ताओं के लिए बहुत जरूरी है। आप ऐसा ज्ञान प्राप्त करने के लिए यहां आए यह देखकर मुझे खुशी होती है।

जैसे नित नया ज्ञान हासिल करने की उत्सुकता कार्यकर्ता में होनी चाहिए वैसे ही जीवन में नित नया परिवर्तन करन की शक्ति भी उसमें होनी चाहिए। लेकिन लोगों को इसमें कुछ कठिनाई महसूस होती है। जीवन-परिवर्तन के लिए दृष्टि, वृत्ति और उत्साह इन तीनों की उनमें कमी पाई जाती है। उसके मूल में है आज का बिगड़ा हुआ जीवन। जीवन अगर ठीक ढंग से चला, जैसा कि एक साधक, शोधक और सेवक का होना चाहिए, तो जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जायगी, परिवर्तन करने की शक्ति अर्थात् बुद्धि की तेजस्विता भी बढ़ती जायगी। क्योंकि परिवर्तन की शक्ति शरीर में नहीं

बुद्धि में होती है। उसी को तेज कहते हैं। तेजस्वी बुद्धि का अर्थ यही है कि बुद्धि जैसा सोचती है वैसा जीवन बनाने की सत्ता उसे शरीर पर होनी चाहिए। ऐसी शक्ति के अभाव में बुद्धि दुर्बल हो जाती है और फिर जीवन निःसार और निस्तेज हो जाता है। बुद्धि के इस तेज को ही आध्यात्मिक तेज कहते हैं, जो महापुरुषों में पाया जाता है। उसके कारण वे जीवन में नित नया परिवर्तन करते रहते हैं। किंतु यह जरूरी नहीं है कि वह तेज महापुरुषों तक ही सीमित रहे। अगर कार्यकर्ता भी जीवन में संयम पा लेंगे तो उम्र के साथ-साथ उनके विचार भी अधिक परिपक्व होते जाएंगे। यही बात हमें प्रकृति में भी दिखाई देती है। कच्चे फल में बीज कमजोर होता है, परंतु जैसे-जैसे वह पकता जाता है भीतर का बीज मजबूत और सख्त बनता जाता है। फल जितना ज्यादा गलता है बीज उतना ही ज्यादा सख्त होता है, यहां तक कि नया अंकुर देने की शक्ति उस सड़े हुए फल के भीतर के बीज में ही होती है। ठीक इसी तरह जैसे-जैसे हमारा शरीर जीर्ण होता जाय, हमारी बुद्धि जीर्ण होने के बजाय तेजस्वी होनी चाहिए। संयत और योग्य जीवन की यही निशानी है।

चरखा संघ के लोगों के सामने जब ग्रामों में जाने का प्रश्न रखा गया तो चंद लोगों ने सवाल पूछा कि यह उनसे कैसे बनेगा। इसके लिए दूसरे नए कार्यकर्ता ढूंढने चाहिए। मैंने उन लोगों से कहा कि जो लोग इतने साल से काम करते आ रहे हैं, उनसे जीवन-परिवर्तन की अपेक्षा न करें तो किससे करें? मैं यहां आप लोगों को अपने आचार्यों की आश्रम

परंपरा का स्मरण दिलाना चाहता हूं, जिसमें उन्होंने उत्तरोत्तर अधिक कठिन और तेजस्वी काम उठाने की रचना की है। सामान्य सेवक के लिए शुरू में ब्रह्मचर्याश्रम का सादा जीवन बताकर आगे बढ़ी हुई जिम्मेदारी के लिए उन्होंने गृहस्थाश्रम का विधान किया है। और जब उम्र बढ़ी और जिम्मेवारियां और भी बढ़ीं तो वानप्रस्थ-प्रवेश का आदेश दिया। इंद्रियों का संयम करके सेवा के लिए जंगल में पहुंचने और वहांकी सृष्टि से एकरूप होने का मार्ग बताया तथा जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई अंत में शास्त्रकारों ने उसे संन्यास लेकर सेवा के लिए घूमते रहने को कहा।

आजकल के लोग पूछ सकते हैं कि बूढ़ों से ऐसी आशा कैसे की जाय? कहा जाता है, 'साठी बुद्धि नाठी'। लेकिन मैं कहता हूं कि ये सारे बूढ़े परिणत-प्रज्ञ होंगे। जिनकी प्रज्ञा परिणत होती है, उनका अपने शरीर पर काबू होता है। वे अपनी बुद्धि और शक्ति को रूप देना चाहें दे सकते हैं। इसलिए मैं मानता हूं कि चर्खा-संघ के कार्यकर्ताओं के लिए गांवों में जाना कठिन नहीं है। आखिर गांव में भी तो करोड़ों लोग रहते ही हैं। वे फिर वहां कैसे रहते होंगे? होता यह है कि शहरवाले गांव से और गांववाले शहर से घबड़ाते रहते हैं। बंबई में रहने का जो आदी हो गया हो उसे जंगल में जाने की बात कहिए तो वह घबड़ा जावेगा, और सोचने लगेगा कि वहां रास्ते नहीं होंगे, मोटरें नहीं होंगी, सब जानवर होंगे। और किसी जंगल में रहनेवाले के सामने शहर में रहने का प्रस्ताव कीजिए तो वह भी घबड़ाकर सोचने लगेगा कि वहां

एकांत नहीं होगा, सब तरफ मोटरें ही मोटरें दौड़ती होंगी इत्यादि। इस तरह कल्पना-शक्ति जब एक स्थान में कुंठित होती है, तो वह अपने स्थान की सहूलियतें और दूसरे स्थान की मुसीबतें ही देखती रहती है। लेकिन गांव में कोई विशेष मुसीबत नहीं है। वहां प्रेम तो इतना होता है कि उसका ठीक परिचय पा लेंगे तो आप उसमें लीन हो जायंगे।

यहां जो कार्यक्रम आपके सामने रखा गया है, उसमें अकेले आदमी की अपेक्षा कुटुंबी आदमी अधिक कार्य कर सकता है। लेकिन इसके लिए हमें अपने प्रेम को परिशुद्ध करने की जरूरत है। हमें अपने कुटुंब की आसक्ति कम करनी होगी, ताकि उसका सहयोग अधिक मिल सके। वरना हम भी पंगु रहेंगे और उन्हें भी पंगु बनाए रखेंगे। अगर आसक्ति कम हुई और हमारी तरह वे भी शिक्षित हो सके, और उसके लिए जितनी मात्रा में विषय-वासना से अलग होना जरूरी है, हम अलग हो जाएं और सेवा की वासना बढ़ाएं तो आप देखेंगे कि आपका कुटुंबी होना वरदान हो गया है। आपकी कमियों को कुटुंब पूर्ति करनेवाला सिद्ध होगा।

आज हिंदुस्तान आपकी तरफ देख रहा है। आप सेवा-ग्राम में एक शिविर खोलते हैं तो सारी नजरें इस तरफ उठ जाती हैं। लोग सोचते हैं कि हमारी सच्ची सेवा करनेवाले तो यही सेवक हैं। क्योंकि कुछ लोग तो सत्ता में और बाकी के संसार में गिरफ्तार हैं। वे लोग कितनी और क्या सेवा कर सकेंगे? इसलिए जन-समुदाय के लेखे तो यह चर्खा-संघ, ग्रामोद्योग-संघ, तालीमी-संघ, और बापू की ऐसी संस्थाएं ही

आशास्थान हैं। मैंने तो कई लोगों को ऐसा कहते हुए सुना है। क्योंकि औरों की सेवा किसी-न-किसी अंश में सकाम होगी। निष्काम सेवा आप लोगों से ही बन सकती है।

एक बात और है। जब तक स्वराज्य नहीं आ जाता, और गुलामी की जंजीरें टूट नहीं जातीं, तबतक शक्ति का स्रोत राजकारण रहता है; परंतु जब देश आजाद हो जाता है, तब शक्ति का स्रोत राजकारण नहीं, समाजसेवा हो जाता है। यह बात अगर ठीक से समझ में न आए तो शक्तिवाले लोग राजकारण में ही लगे रहेंगे और अपनी शक्ति का क्षय होते देखेंगे। इसलिए चूंकि अब देश आजाद हो गया है हमें सत्ता के बजाय समाज में पहुंचना चाहिए। शक्ति हमेशा त्याग की आश्रित होती है। त्याग के क्षय से शक्ति-क्षय शुरू हो जाता है। जब देश आजाद नहीं था, तब राजकारण में त्याग का मौका था सत्ता में तो भोग का वातावरण अधिक रहता है। जनक जैसे त्यागी लोग ही सत्ता को क्षेमकारिणी बना सकते हैं। क्योंकि सत्ता के दोष, वातावरण के बावजूद भी उन्हें छू नहीं पाते।

इसलिए यह सब परख कर कि शक्ति का स्रोत त्याग में है और त्याग गांव की सेवा में है, आप लोग गांव में जाइएगा। फिर आपको ऐसा नहीं लगेगा कि सरकार आपकी ओर ध्यान नहीं देती, कांग्रेस आपकी ओर ध्यान नहीं देती, या लोग आपकी ओर ध्यान नहीं देते। आपको इस तरह सोचना ही नहीं चाहिए। क्योंकि आशा के लिए हमें कोई दूसरी जगह ढूंढनी नहीं है। हम खुद अपने आशास्थान हैं। हमें जो आशा

मिलेगी वह हमारे भीतर के परमात्मा से ही मिलनेवाली है।

मैं उम्मीद करता हूं कि यहां आपने जो कुछ पाया है और उसके कारण आपने अपने भीतर जो कुछ अनुभव किया है उससे आप में एक नई धृति और उत्साह पैदा होगा। गीता ने भी हमें धृत्युत्साह का सबक दिया है। यदि कार्यकर्ताओं में ही इनकी कमी हो तो दूसरों को स्फूर्ति कैसे मिल सकती है।

सेवाग्राम शिविर
१२-११-४८